और कृश कर्णद्वय निन्दनीय हैं। शिराविहीन निर्लोम, अर्द्धचन्द्राकृति, अनिम्न और अङ्गुलित्रय परिमित भालदेश नारीका सौभाग्य और आरोग्यका कारण है। स्वस्तिकरेखासम्पन्न ललाट राज्यसम्पत्सूचक है। जिनका मस्तक लम्बा है, वह निश्चय देवरघातिनी होती हैं। रोमशशिराल और उन्नत मस्तक होनेसे रोगिणी जानना चाहिये। सरल सीमन्तदेश प्रशस्त है। समुन्नत करिकुम्भाकार और सुवृत्त मौलि सौभाग्य और ऐश्वर्य्यका सूचक है। जिनका मस्तक स्थूल है, वह विधवा होती हैं; जिनका मस्तक दीर्घ है, वह वेश्या और जिनका मस्तक विशाल है, वह दुर्भागा होती है। अलिकुलकी तरह कान्तिसम्पन्न सूक्ष्म, स्निग्ध, कोमल, किञ्चिदाकुञ्चिताग्र कुटिलकुन्तल अति शुभसूचक हैं। पहेय स्फुटिताग्र, विरल, पिङ्गलवर्ण लघु और रुक्ष केशसमूह दुःख, दारिद्र्य और बन्धके सूचक हैं। स्त्रियोंके भ्रूद्वयके बीच या ललाटमें मशकरेखा हो, तो वह राज्यसूचक है। रमणीके वाम कपालमें शोणवर्ण मशकरेखा बहुतर मिष्टान्नभोगका सूचक है। रमणीके हृदयमें तिलक या पद्म, वज्र, अङ्कुश, ध्वज या त्रिशूलादि चिह्न सौभाग्यसूचक हैं। जिनके दक्षिणस्तनमें शोणवर्ण तिलक या पद्मादि-चिह्न हों, वह चार कन्या और तीन पुत्र प्रसव करेंगी। जिनके वामस्तनमें तिलक या पद्मादि-चिह्न हों,

वह पहले एक पुत्र प्रसवकर विधवा होगी, जिनके गुह्यके दक्षिण भागमें तिलक हो, वह राजपत्नी होतीं या राजमाता होती हैं। राजमहिषी होके नासिकाके अगले भागमें रक्तवर्ण मशकचिह्न दिखाई देता है। नासिकाके अग्रभागमें कृष्णवर्ण मशक-चिह्न पतिविनाश और असतीत्वका सूचक है। नाभिके निम्नमें तिलक, मशक और पद्मादि चिह्न शुभसूचक हैं। गुल्फदेशमें मशक या तिलक-चिह्न दरिद्रताका सूचक है। कर, कर्ण, कपोल अथवा वामकण्ठमें तिलक, मशक और पद्मादि चिह्नमें यदि कोई भी चिह्न हो, तो नारी प्रथमगर्भमें पुत्र प्रसव करेंगी। जिनके ललाटमें विधिलिखित त्रिशूल चक्र हो, वह बहुसंख्य स्त्रियोंपर आधिपत्य पाती हैं। जो स्त्री नद्रावस्थामें दांतसे कट कट शब्द करें या प्रलाप करें, सुलक्षणा होनेपर भी उनसे विवाह करना उचित नहीं। हाथके रोमसमूह प्रदक्षिणावर्त्त हों, तो धर्मसूचक हैं; और वामावर्त्त होनेसे अशुभसूचक हैं। नाभि कर्ण और वक्षःस्थलका दक्षिणावर्त्त रोम शुभसूचक हैं। पृष्ठवंशके दक्षिणमें दक्षिणावर्त्त रोम सुखसूचक हैं। पृष्ठके मध्यस्थलमें नाभिकी तरह वर्त्तुलाकार हो, तो रमणी दीर्घायुः और पुत्रवती होती हैं। राजमहिषीके ही स्त्री-अङ्गके ऊपर दक्षिणावर्त्त रोम होता है। घण्टाकृति दक्षिणावर्त्त हो, तो बहु-

अपत्य और बहुत सुख भी होता है। कटिके रोमावर्त्त यदि गुह्य पर्य्यन्त विस्तृत हों, तो पति और अपत्य नाश होते हैं। पृष्ठके रोमावर्त्तद्वय यदि उदर पर्य्यन्त विस्तृत हो, तो वह शुभकर नहीं। वह एक आवर्त्त नारीको पतिघातिनी बनाता है, दूसरा उन्हें पुंश्चली करता है। कण्ठस्थित रोम दक्षिणावर्त्त होनेसे दुःख और वैधव्यके सूचक हैं। जिनके सीमन्तमें अथवा ललाटमें दक्षिणावर्त्त हो, उन्हें प्रयत्न सहित दूर हीसे परित्याग करना उचित है। जिनकी कृकाटिकाके मध्यस्थलमें वामावर्त्त या दक्षिणावर्त्त रोमसमूह हों, वह वर्षके भीतर ही पतिको विनष्ट करती हैं। मस्तकमें एक वामभागमें दो वामावर्त्त द्रय दिनमें ही पतिके विनाशके सूचक हैं। अतएव सबुद्धि-व्यक्ति दूरसे हो उन आवर्त्तवती नारीको परित्याग करेंगे। जिनकी कटिमें आवर्त्त हो, वह कुलटा होती हैं; जिनकी नाभिमें आवर्त्त हो, वह पतिव्रता होतीं और जिनकी पीठमें हो, वह पतिनाशिनी अथवा कुलटा होती हैं। स्कन्दने कहा, जो स्त्री सुलक्षणा होकर भी दुःशीला हों, वह कुलक्षणाकी शिरोमणि हैं; जो स्त्री अलक्षणा होकर भी साध्वी हों, वह सब सुलक्षणाओंकी आश्रय हैं। विश्वेश्वरकी अनुग्रहसे, सुलक्षणाक्रान्ता, सुचरित्रा, अपनी वशवर्त्तिनी और पतिदेवता स्त्री गृहस्थाश्रममें पाई जाती हैं। पूर्व्व जन्ममें जिन्होंने कुमारीगण-को विविध अलङ्कारसे अलङ्कृत किया है वही सब रमणी इस जन्ममें सुरूपा हुई हैं। जिन्होंने पूर्व्वजन्ममें किसी पुण्य-तीर्थमें स्नान या देहत्याग किया है, वही इस जन्ममें लावण्यमयी और सुलक्षणा हैं। जिन्होंने पूर्व्वजन्ममें जगन्माता भवानीकी पूजा की है, वही सुन्दर चरित्रयुक्ता हैं और पति उनके वशवर्त्ती हैं। जिनके पति अनुकूल हैं, उन सब सुशीला हरिण-नयना रमणियोंके लिये यहां ही स्वर्ग और मुक्तिसुख है; क्योंकि, सुलक्षणाओंका फल ही यही है। प्रमदागण अपने सुचरित्र और सुलक्षणासमूहके फलसे स्वल्पायु स्वामीको भी दीर्घ-जीवीकर आनन्दभाजन करती हैं। अतएव विचक्षण व्यक्तिगण पहले लक्षणोंकी परीक्षाकर, दुर्लक्षणा परित्यागकर, सुलक्षणा स्त्रीसे ही विवाह करेंगे। हे कुम्भयोने! मैंने गृहस्थोंकी सुखकेलिये स्त्रीलक्षण-समूह कहा; अब विवाह समूह कहता हूं सुनो।

सप्तत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंश अध्याय।

गृहि-सदाचार।

स्कन्दने कहा,—हे अगस्त्य! ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व्व, राक्षस, और पैशाच यह आठ प्रकारके विवाह हैं। उनमें वरको बुलाकर अलङ्कारा कन्या

प्रदान करनेको ब्राह्म विवाह कहते हैं। इस विवाहसे विवाहित न्याका गर्भजात पुत्र एकविंशति पुरुषका उद्धार करता है। यज्ञकर्ममें रत ऋत्विकको कन्या दान करनेको दैव विवाह कहते हैं; उसका गर्भजात सन्तान चतुर्द्दश पुरुषको पवित्र करता है। वरसे गो-मिथुन लेकर कन्या देनेको आर्ष विवाह कहते हैं; उससे उत्पन्न पुत्र छः पुरुषका उद्धार करता है। "तुम दोनो गार्हस्थ्य धर्म्म पालन करो" कहकर जो वरको कन्या देते हैं, उसे प्राजापत्य कहते हैं; इस कन्याका तनय छः पुरुष पर्य्यन्त पूत करता है। यह चार तरहका विवाह ब्राह्मणोंके धर्म्मानुगत है। धन लेकर बेचनेसे आसुर, परस्परमें अनुरागसे गान्धर्व्व, बलपूर्व्वक कन्याहरण करनेको राक्षस—यह विवाह सज्जन निन्दित और किसी छलसे कन्या हरण करनेको पैशाच विवाह कहते हैं—यह गर्हित कथित है। इनमें गान्धर्व्व, आसुर और राक्षस यह तीन विवाह क्षत्रिय और वैश्यको प्रायशः है; किन्तु अष्टम पैशाच विवाह अति पापमय है, पापियोंमें ही प्रचलित रह सकता है। सजातीय विवाह कालमें पाणिग्रहण पूर्व्वक विवाह करेंगे; किन्तु क्षत्रिय कन्या शर, वैश्यकन्या प्रतोद और शूद्र कन्या वसनाञ्चल ग्रहण करेंगी, यह असवर्णविषय स्थलमें ही उक्त प्रथा और नहीं दिखाई देता है। बराबर वर्णोंके विवाह स्थलमें सब लोग पाणिग्रहण करेंगे, ऐसा जानना चाहिये। धर्म्मसङ्गत विवाहसे धर्म्मिष्ठ शतवर्ष जीवी सन्तान होता और अधर्म्य विवाहसे अधार्म्मिक, हतभाग्य, निर्द्धन, अल्पजीवी सन्तान होता है। ऋतुकालमें पत्नीगमन ही गृहस्थका परम धर्म्म अथवा नारियोंको, जो नर है, उन्हें स्मरणकर कामनानुसार गमन करना भी धर्म्ममें गण्य है। दिनमें स्त्री गमन पुरुषकी परमायुःक्षयकर है; अतएव मनीषासम्पन्न व्यक्ति दिवाभाग और समस्त पर्व्वदिन यत्नपूर्व्वक स्त्री त्याग करेंगे। स्त्रियोंका ऋतुकाल षोड़शरात्रि है; उसमें पहले चार रात्रि गर्हित है; युग्म रात्रिके गमनसे पुत्र और अयुग्म रात्रिके गमनसे कन्या उत्पन्न होती है। दुःस्थचन्द्र, मघा और मूला नक्षत्र त्यागकर, विशेषतः पुंक्षेत्रमें, शुचि हो पत्नीसे उपगत होंगे, ऐसा करनेसे पुरुषार्थसाधक शुचि पुत्र उत्पन्न होता है। आर्ष विवाह, जिसमें गोमिथुन दानकी बात कही गई है, वह प्रशस्त नहीं; कारण कन्या सम्बन्धमें यत्किञ्चित शुल्कसे भी कन्याविक्रयजनित पाप होता है। आत्मविक्रयीको प्रलयकालतक विट्कृमिभोजन नामक निरयमें वास करना पड़ता है; अतएव पिता कन्याके किञ्चित्मात्र धनसे भी जीविकानिर्व्वाह न करेंगे। पित्रादि बान्धवगणके मोहवश स्त्रीधन उपजीविका करनेसे, उन्हें केवल नरक-

गामी हो नहीं होना पड़ता उन लोगोंके पूर्व्वपुरुषगण भी नरकमें जाते हैं। जहां पति, पत्नीसे सन्तुष्ट और पत्नी, पतिसे सन्तुष्ट हैं, वहां साक्षात् लक्ष्मी और विष्णु सन्तुष्टचित्त हो वास करते हैं। वाणिज्य, राजसेवा, वेदपाठ वर्जन कुविवाह और कर्म्मलोप यह कई एक कुलके अधोपतनके कारण हैं। गृहस्थ प्रतिदिन वैवाहिक वह्निसे गृहकर्म्म पञ्चयज्ञ और दैनन्दिन पाकक्रिया समाधा करेंगे। उदूखल, मूषल, पेषणी (सिललोढ़ा), चुल्ली जलकुम्भ और सम्मार्ज्जनी यह पांच गृहस्थोंका दैनिक सूना (जीवहिंसाका स्थान) है। इन पांचो सूना दोष निराकरणके लिये गृहस्थका श्रेयस्कर वक्ष्यमाण पञ्चयज्ञ निर्द्दिष्ट है। अध्ययन और अध्यापन, ब्रह्मयज्ञ है; अन्नादि द्वारा पितृतर्पणका नाम पितृयज्ञ और होमका नाम देवयज्ञ है, वैश्वदेव नामक भूतयज्ञ और अतिथि सेवाका नाम नृयज्ञ है। गृहस्थ पितरोंकी प्रीतिके लिये अन्न, जल, दुग्ध, फल और मूल द्वारा प्रतिदिन श्राद्ध करेंगे। सत्पात्रको गोदान करनेसे जो पुण्य होता है, भिक्षुकका यथाविधि सम्मानकर भिक्षा देनेसे भी वही फललाभ होता है। तपस्या और विद्यारूप इन्धनसे प्रदीप्त ब्राह्मणके मुखरूप अनलसे हव्यकव्यमें आहुति देनेसे, दुस्तर पापसमुद्र और विघ्नराशिसे गृहस्थ उद्धार पाते हैं। अतिथि सत्कृत न होकर जिनके घरसे हताशभावसे प्रतिगमन करते हैं, वह तत्क्षणात् आजन्मसञ्चित पुण्य वञ्चित होते हैं। अतएव अतिथिके सन्तोषके लिये प्रियवाक्य, शयनार्थ तृण, विश्राम भूमि और पादप्रक्षालनार्थ अन्ततः जल देना उचित है। जो गृहस्थ आतिथ्य लोभसे परान्न भोजन करते हैं, वह मरकर उसी अन्नदाताके यहां पशुरूपमें जन्म पाते हैं, और अन्नदाता उसका पुण्य पाते हैं। अतिथि सूर्य्य अस्तमितकर घरसे आनेपर भी उनका यत्नपूर्व्वक सत्कार करेंगे अन्यथा असत्कृत हो और जगह जानेपर गृहस्थको पापराशि प्रदान करते हैं। इस जगतमें अतिथिका अवशिष्ट भोजन करनेसे दीर्घायु और धनवान् होते हैं और अतिथिको प्रत्याख्यानकर अन्न भोजन करनेसे गृहस्थ पापग्रस्त होते हैं। वैश्वदेव बलिके उपरान्त और सूर्य्यास्त कालमें आनेवालेको अतिथि कहते हैं; इसके पहले आनेवाले किसी स्थानमें दृष्टपूर्व्व व्यक्ति अतिथिमें गण्य नहीं हैं। ब्राह्मणने हाथमें बलिपात्र ग्रहण किया है, इस अवसरमें यदि दूसरा अतिथि मिले, तो उसका वह बलिप्रदानकर यथाशक्ति अन्नपाक करेंगे। नवविवाहितास्त्री, पुत्र या दुहिता, बालक, गर्भिणी और रुग्न व्यक्तिको अतिथिके पहले भोजन करावेंगे; इस विषयमें विचार न करें। गृहस्थ पितरोंको, देवता और मनुष्यको अन्न दे अवशिष्ट भोजन करनेसे अ-

ंत भोजन करते और जो उदरपरायण अपने लिये पाक बना भोजन करते हैं, वह केवल पाप भोजन करते हैं। गृहस्थ व्यक्ति मध्याह्नकालीन वैश्वदेव बलि स्वयं करेंगे और उनकी पत्नी सायंकालको सिद्धअन्न अमन्त्र बलि देगी। यही सायंकालीन वैश्वदेव-बलि कहा जाता है। यह सायंकाल और प्रातःकालमें विहित है। ब्राह्मणके वेदाध्ययन करनेपर भी यदि वैश्वदेव अतिथिसंस्कार विवर्ज्जित हों, तो उन्हें वृषल कहना चाहिये। जो वैश्वदेवका बलि न देकर भोजन करते हैं, वह इस लोकसे विपन्न होते और देहान्तपर काकयोनिको प्राप्त होते हैं। ब्राह्मण अनलस भावसे प्रतिदिन वेदोक्त अपना कर्म्म करेंगे; यथाशक्ति करनेसे वह स्वर्गगामी होते हैं। षष्ठी, अष्टमी, चतुर्द्दशी और पञ्चदशी तिथिमें तैल, मांस, मैथुन, और चौरकर्म्ममें पाप नियत आश्रय करते हैं। राहुग्रस्त, उदय और अस्त।मनोन्मुख, नभोमध्यगत और जलमें प्रतिविम्बि सूर्य्यको न देखेंगे। जलमें आत्मरूप न देखेंगे, वारिवर्षण कालमें दौड़कर न चलेंगी, वत्सबन्धन रज्जु लङ्घन न करेंगे और नग्नावस्थामें जलमें प्रवेश न करेंगे। देवगृह, विप्र, धेनु, मधु उद्धृत मृत्तिका, घृत, जन्मवृद्ध, वयोवृद्ध, विद्यावृद्ध, तपस्वी अश्ववृक्ष, चैत्यवृक्ष ग्राम, जलपूर्ण कुम्भ सिद्धान्त हैं। दधि और सर्षप इन्हें चलनेके समय दाहने करेंगे। रजोदर्शनकालमें तीन दिन पत्नीसे उपगत न होंगे। पत्नीके साथ एक पात्रमें भोजन न करेंगे और एकवस्त्रसे या एक उत्लाट आसनपर बैठकर आहार न करेंगे। तेजोलाभकी इच्छा रखनेसे द्विजश्रेष्ठ पत्नीके भोजन करनेके समय उसे न देखेंगे। दीर्घजीवनके प्रार्थी होकर देवता और पितृगणको निवेदन न करके कभी नया अन्न भोजन न करेंगे और पशुयाग न करके मांसभक्षण न करें। गोष्ठ वल्मीक, भस्म और जिसमें प्राणी विद्यमान हैं, ऐसे गर्त्तमें, या चलते चलते खड़े होकर गो, ब्राह्मण, सूर्य्य, वायु, अग्नि, चन्द्र जल और गुरुजनको देखते हुए मलमूत्र त्याग न करेंगे। काष्ठ, लोष्ट, तृण और पत्र प्रभृति द्वारा भूमि आवृत कर वस्त्रसे मस्तक आच्छादनकर मौनावलम्बन हो विण्मूत्र परित्याग करेंगे। रात और दिनमें अन्धकारस्थलमें भयस्थानमें और प्राणबाध समयमें जिस तरफ चाहें मुंह कर मलमूत्र त्याग सकते हैं। मुख द्वारा अग्निको न फूंकेंगे, नग्नावस्थामें नारीको न देखेंगे, अग्निसे पदद्वय उत्तप्त न करेंगे और अमेध्यवस्तु निक्षेप न करेंगे। प्राणिहिंसा, द्विसन्ध्य भोजन और सन्ध्याकालमें वा पश्चिमास्य और उत्तरास्य हो शयन न करेंगे। दीर्घजीवनकी कामना रखकर जलमें विण्मूत्र और निष्ठीवन त्याग

न करेंगी। वत्सके दुग्धपानके समय बाधा न देंगी और इन्द्रधनु किसीको न दिखावेंगी। निर्ज्जन घरमें अकेले न सोवेंगी, निद्रित व्यक्तिको, न जगावेंगी। अकेले राह न चलेंगी और अञ्जलिसे पानी न पियेंगी। जो व्यक्ति स्वयं श्राद्धकर अस्नानदशा दूसरेके श्राद्धमें भोजन करते हैं, वह पापभागी होते हैं और दाता, श्राद्धफल लाभसे वञ्चित होते हैं। दिवाभागमें उद्धृतसार दुग्ध प्रभृति और रात्रिकालमें दधिभक्षण निषिद्ध है। ऋतुमतीके साथ एकत्र वास करना उचित नहीं और रातको आकण्ठ भोजन अवैध है। नृत्यगीतवाद्यसे आसक्त न होंगी और कांसपात्रमें पैर न धोयेंगी, भग्नपात्रमें भोजन न करेंगी और अस्थि प्रभृति अशुचि पदार्थ अपवित्रस्थानमें अवस्थान न करेंगी। गोपृष्ठपर आरूढ़, चिताधूम, नदीसन्तरण, नवोदित सूर्य्यको रश्मि और दिवानिद्रा दीर्घजीवनेच्छु व्यक्तिको त्याग करना उचित है। स्नानके उपरान्त गात्रमार्ज्जना, पथमें शिखात्याग, मस्तक कम्पन, पाद द्वारा आसनाकर्षण, दन्त द्वारा नखलोमोत्पाटन और नख द्वारा नख और तृणच्छेदन करना कर्त्तव्य नहीं। शुभाकाङ्क्षासे किसी काममें प्रवृत्त हो उसे कभी त्याग न करेंगी, अपने अथवा दूसरेके घर बेराह भीतर जाना निषिद्ध है, पणाके सिवा अक्षक्रीड़ा न करेंगी और रोगी या अधार्म्मिकके साथ एकत्रमें उपवेशन न करेंगी, नग्नावस्थामें शयन और पाणितलमें बहुत अन्न लेकर क्रमशः भोजन करना विधेय नहीं। भीगे पैर करमुखसे भोजन करना कर्त्तव्य है; ऐसा करनेसे मनुष्य दीर्घजीवी होते हैं। भीगे पैरसे शयन उच्छिष्ट अवस्थामें इधर उधर जाना और शय्यातलस्थित हो अशन, पान और जप करना ब्राह्मणका कर्त्तव्य नहीं है। पादुका धारणकर या खड़े होकर आचमन और धाराजल पान करना उचित नहीं और सुखाभिलाषी व्यक्तिको रात्रिकालमें तिलोत्पन्न खाद्य भक्षण गर्हित है। मलमूत्र दर्शन, उच्छिष्टावस्थामें मस्तक स्पर्श और तुष, अङ्गार, भस्म, केश और मृण्मयपात्रमें भग्नखण्डके ऊपर चढ़ना अवैध है। पतितके साथ वास करनेसे अपनेको भी पतित होना पड़ता है; अतएव ऐसा न करेंगी। शूद्रको कभी वैदिकमन्त्र न सुनावेंगी, ऐसा करनेसे ब्राह्मणको ब्राह्मण्यहानि और शूद्रको धर्म्महानि होती है; शूद्रको धर्म्मका उपदेश न करेंगी; ऐसा करनेसे श्रेयोहानि होती है। कारण, द्विजशुश्रुषा ही शूद्रोंका, परमधर्म्म कहा गया है। मस्तककण्डूयन, मस्तकपर कराघात, क्रोशन और केशोल्लुञ्चन शुभदायक नहीं। लोभवश शास्त्रविरुद्धाचारी भूपालके प्रतिग्रह करनेसे ब्राह्मण सवंश तामिस्र प्रभृति एकविंशति नरकमें जाते हैं, पंञ्चालमें वि-

द्यु दुर्गज्जन, वर्षाकालमें दिवाभागमें पांशुवर्षण और रात्रिकालमें महा वायुध्वनि होनेसे अनध्याय कहा जाता है। उल्कापातमें, भूमिकम्पमें, दिग्दाहमें, धूमकेतूदयमें, सायं और प्रातः सन्ध्याके समय, शूद्रसन्निधानमें, राजाके सूतकाशौचमें, चन्द्र-सूर्य्य-ग्रहणमें, अष्टका, चतुर्द्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा और प्रतिपद् तिथिमें, आत्मीय पक्वान्न भोजनमें, हस्ती और ऊंटके बीचसे जानेमें, शृगाल गर्द्दभ ऊंटके निनादमें, रोदनध्वनि सुननेसे, बहुत आदमियोंके समागमसे, उपाकर्म्म और उत्सर्ग नामक कर्म्मसे, नौकामें, पथमें, वृक्षके ऊपर, जलमें अरण्यक नामक वैदिकदेशके अध्ययनके उपरान्त और वाण या सामवेदका निनाद सुनकर अनध्याय समझेंगी। इन सब अनध्याय समयमें ब्राह्मण कभी वेद और वेदाङ्गका अध्ययन न करेंगी। भेक, मार्ज्जार, कुक्कुर, सर्प और नकुलके गुरु और शिष्यमेंसे गमन करनेपर अध्ययनमें निवृत्त होंगी। चतुर्द्दशी अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा-तिथिको ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करेंगी। इस जगत्‌में परस्त्रीगमन जीवनहानिकर है, अतएव, उसे दूर होसे परिहार करें। पूर्व्वविभव गत हुआ है जानकर अपनेको अवज्ञा करना उचित नहीं; कारण, उद्योगी पुरुषके पक्षमें विद्या या सम्पद कुछ भी दुर्लभ नहीं है। हे कुम्भयोने! लोग सत्य और प्रिय वचन बोलेंगी, सत्य और अप्रिय न कहेंगी और मिथ्या तथा अप्रिय भी न बोलेंगी, इसीको धर्म्म जानेंगी। किसीके साथ साक्षात होनेपर भद्र (अच्छे) जैसी ही बात कहेंगी, लोगोंकी भलाईकी चिन्ता करेंगी, भद्रसंसर्ग करेंगी और अभद्रका सङ्ग कभी न करेंगी। बुद्धिमान् लोग रूपहीन, निर्द्धन और नीचकुलोद्भव व्यक्तिकी निन्दा न करेंगी और अपवित्र अवस्थामें चन्द्र, सूर्य्य या ग्रहण नक्षत्रादि न देखेंगी। वाक्यवेग, मानसिकरोग, लोभ, उत्कोच, द्युत, शौल्य और आर्त्तजनका द्रव्य दूर होसे परिहार करेंगी। उच्छिष्ट अवस्थामें पाणि द्वारा गो, ब्राह्मण और अग्निका स्पर्श कर्त्तव्य नहीं। अनातुर अवस्थामें अकारणसे निज इन्द्रिय भी स्पर्श न करेंगी। ब्राह्मण अहोरात्र श्रुतिजप, शौच और आचार सेवन और परार्थकी अनिष्टबुद्धि न करनेसे जातिस्मर होते हैं। वृद्धगणको भक्तिके साथ प्रणाम करेंगी, अपना आसन छोड़ देंगी, आप नीचे बैठेंगी, गमनकालीन उनके अनुगामी होंगी। देवता, ब्राह्मण, वेद, नृपति, साधु, तपस्वी और पतिव्रता नारीकी निन्दा कभी न करेंगी। मनुष्यके स्तुतिवादसे विरत रहेंगी, आत्मावमाननाको मनमें स्थान न देंगी, उपस्थित त्याग न करेंगी और परमार्थ उद्घाटनसे निवृत्त होंगी, अधर्म्म करनेसे पहले वृद्धि, शत्रुजय और सर्व्वतोभावसे अच्छा होता है सही, किन्तु परिणाममें, सवंश विनष्ट होते हैं। पराये जलाशयमें पांच-

बार मृतपिण्ड उद्धारकर स्नान करेंगे, नहीं तो जलाशय खोदनेवालेको दुष्कृतिका चतुर्थ भाग प्राप्त होता है। देश और काल विशेषमें श्रद्धापूर्व्वक सत्पात्रको यथाविधि दान करनेसे अनन्तफल होता है। जो व्यक्ति भूमि दान करते हैं, वह राजचक्रवर्त्ती होते हैं। अन्न देनेसे इस लोकमें परलोकमें सुखी, जल दान करनेसे सदा सन्तुष्ट, रौप्य देनेसे सदा रूपवान्, दीप दान करनेसे निर्म्मलदृष्टि, गोदान करनेसे सूर्य्यलोकवासी, सुवर्ण देनेसे दीर्घजीवी, तिल दान करनेसे सत्पुत्रवान्, गृहदान करनेसे अत्युच्च सौधपति, वस्त्र देनेसे चन्द्रलोकगामी, अश्व देनेसे दिव्यविमानस्वामी, वृष दान करनेसे लक्ष्मीवान, शिविका पर्य्यन्तक दान करनेसे शुभार्य्यावान, धान्य प्रदान करनेसे सर्व्वसमृद्धिशाली, अभय दान करनेसे ऐश्वर्य्यवान् और वेद दान करनेसे ब्रह्मलोकमें पूज्य होते हैं। वेददान और सर्व्वस्वदान दोनो बराबर है। जो व्यक्ति किसी उपायसे वेद दान कराते हैं, वह भी दाताके समान फल पाते हैं। जो श्रद्धापूर्व्वक प्रतिग्रह और दान करते हैं, वह दोनो ही स्वर्गीय पुरुष हैं। अश्रद्धासे दान और प्रतिग्रह करनेसे अधःपतित होते हैं। अनृतभाषणसे यज्ञ, गर्व्वसे तपस्या, कीर्त्तनसे दान और ब्राह्मण-निन्दासे आयु हानि प्राप्त होता है। गन्ध, पुष्प, कुश, शय्या, शाक, मांस, दुग्ध; दधि, मणि, मत्स्य, गृह और धान्य यह सब उपस्थित मात्रसे ग्रहण किया जा सकता हैं, मधु, उदक, फल, मूल, काष्ठ और अभयदक्षिणा यह सब भी अयाचित उपस्थित हो, तो निकृष्ट व्यक्तिसे भी ले सकते हैं। शूद्रोंमें दास, हज्जाम, गोपालनकारी, वंशका मित्र, कृषिकार्य्यकारी और आत्मसमर्पक इनका पक्क अन्न भोजन विधिबोधित है। इस तरह मनुष्य, देव ऋषि और पितृऋणसे आत्ममोचनकर पुत्रको सब अर्पणकर वाणप्रस्थ अवलम्बन करेंगे। घरमें रहकर भी ज्ञानका अभ्यास करेंगे अथवा काशी आश्रय करेंगे। सम्पूर्ण ज्ञानलाभसे या वाराणसी आश्रयसे मुक्ति हो सकती है। एक जन्ममें सम्पूर्ण ज्ञानलाभकी सम्भावना नहीं है, किन्तु काशीमें शरीर त्यागमात्रसे मुक्ति स्थिरकल्प है। आज, कल, परसों अथवा शताधिक वर्ष हो, देहका अवश्य ही पतन होगा; किन्तु यदि काशीमें हो, तो मुक्ति लाभ होती है। वह काशी सबको लभ्य नहीं है, जो सदाचारी हैं, उन्हींको लभ्य है; अतएव विद्वान्लोग उस सदाचारको लङ्घन करनेके लिये हृदयमें स्थान न देंगे। स्कन्धकी ऐसी बात सुनकर अगस्त्यने कहा, हे षड़ानन! सदाचार प्राप्य उस काशीका माहात्म्य फिरसे कहिये, हे स्कन्द! मैं पूछता हूं, काशीमें कौन कौन लिङ्ग ज्ञानदायक हैं? "काशीमें ही मेरी मति है, काशीमें ही मेरी रति है।

बिना काशीके मैं चित्रपुत्तलिकाकी तरह हूं, जागता नहीं, निद्रा नहीं, भोजन पान नहीं,—केवलमात्र "काशी" यही दो अक्षर-रसुधापान करके जीवन धारण करता हूं। अगस्त्यकी बात सुनकर स्कन्दने काशीमाहात्म्य कहना आरम्भ किया।

अष्टात्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंश अध्याय।

अविमुक्तेश्वराविर्भाव।

स्कन्दने कहा,—हे महात्मन् अगस्त्य! मुक्तिसम्पद्दायिनी कलुषनाशिनी काशीकी कथा सुनो। अहो, कैसी विचित्र है! जिसको निष्प्रपञ्च, निरालम्ब, निर्विकल्प, निराकार, निरञ्जन, स्थूल, सूक्ष्म, परम-ब्रह्म कहते हैं, वह सर्व्वव्यापी होनेपर भी, इस क्षेत्रमें व्यापकर विराजमान हैं। वह क्या अन्यत्र जीवगणके संसारमोचनमें समर्थ नहीं हैं? ऐसा नहीं; तब जो इस स्थानमें ही स्थिर मुक्ति दी है, उसका कारण सुनो। दूसरी जगह वह परमब्रह्म भगवान् शिव महायोगने निष्काम महादान या महातपस्यामें मुक्ति दी है, किन्तु इस जगह बिना महायोगके बिना उस महादानके, बिना उस अति दीर्घ तपस्याके मुक्तिदान देते हैं। वह ब्रह्म विप्लवा होनेसे भी काशीसे अन्तरित नहीं करते, यही महायोगमें गण्य है; तपो-योगका यही दूसरा कारण है। नियम-पूर्व्वक सुभक्तिसहित, विश्वनाथके मस्तक-पर जो पत्र, पुष्प, फल और जल चढ़ाया जाता हैं, वही इस जगह स्नानसे महा-दान है, विशुद्ध गङ्गाजलमें स्नानकर मुक्ति-मण्डपमें क्षणकाल स्थिरभावसे उपवेशन किया जाय, वही इस यहांकी दीर्घ तपस्या है। काशीक्षेत्रमें भिक्षुकको सत्कारपूर्व्वक जो भिक्षा दी जाती है, तुलापुरुषदान उसकी सोलह कलाकी एक कलाके योग्य भी नहीं है। विश्वनाथका हृदयमें ध्यानकर क्षणकाल जो भगवानके दक्षिण भागमें नेत्र-निमीलन करते हैं, यही महायोग—सर्व्वयोगका प्रधान है। क्षुधा, ताप विदूरितकर और इन्द्रियचापल्य दमनकर काशीमें अवस्थान करना ही कठोर तपस्या है। और जगह प्रतिमासमें चान्द्रायणव्रत करनेसे जो फल होता है, यहां चतुर्द्दशी तिथिको नक्त-भोजनसे वही फललाभ होता है। अन्यत्र एक मास उपवाससे जो फल उपार्ज्जित होता, यहां श्रद्धापूर्व्वक एकाध उपवास करनेसे निश्चय ही वह फल लाभ होता है। अन्यत्र चातु-र्म्मास्य व्रतसे जो महाफलका होना कहा गया है, इस काशीमें एकादशीके उपवाससे निःसंशय वही फल होगा। दूसरी जगह छः महीने अन्नत्याग करनेसे जो फल होता है, काशीमें एक शिवरात्रि उपवाससे निश्चय वही फल होता है। मानव अन्यत्र

व्रत अवलम्बनकर संवत्सर उपवाससे जैसे फललाभमें समर्थ होते हैं, काशीमें त्रिरात्र उपवाससे अविकल उसके सदृश फल होता है। हे मुने! अधिक क्या, प्रति मासमें कुशाग्रभागके जलपानसे अन्यत्र जो फल होता, काशीकी उत्तरवाहिणी गङ्गाका एक गण्डूष जलपान करनेसे ही वह फल होता है। काशीकी महिमा अनन्त है, वर्णन करनेमें कौन व्यक्ति समर्थ है? वहां भगवान् शिव मुमुर्षु-व्यक्तिके कानमें मन्त्र देते हैं। अहा! क्षणकाल कैसा अनिर्व्वचनीय मन्त्र देते हैं, जिसको सुनकर मानव मरकर भी अमरत्व लाभ करते हैं। आहा। स्मररिपु स्वयं शङ्कर, मन्दर पर्व्वतसे गमनकालमें काशीपुरी स्मरणकर फिर उसके लाभके लिये तुम्हारी ही तरह न सन्तप्त हुए थे? अगस्त्यने कहा, हे प्रभो! निदारुण देवगणने स्वकार्य्य उद्धारके लिये मेरा काशीत्याग कराया था, भगवान् हरने क्यों त्याग किया था? वह पिनाकधारी देव भी क्या मेरी तरह पराधीन हैं? फिर उन्होंने, निर्व्वाणरत्नराशि काशी किस लिये त्याग की, कहिये! स्कन्दने कहा, हे मुने! मित्रावरुण तनय! जैसे तुमने देवताओंके अनुरोधसे परोपकारके लिये काशी त्याग की थी, वैसे ही ब्रह्माके अनुरोधसे स्वरक्षाके लिये भगवान् रुद्र काशी त्याग करनेपर क्यों बाध्य हुए थे, उस विषयकी बात कहता हूं; सुनो। अगस्त्यने कहा हे षड़ानन! ब्रह्माने कृपासागर भगवान् रुद्रसे कैसी प्रार्थना की थी, किसलिये प्रार्थना की, वह मुझसे कहिये। स्कन्दने कहा, विप्र! पुराकालमें पाद्यकल्पसे स्वायम्भुव मन्वन्तर तक साठ वर्ष सर्व्वलोक भयङ्करी अनावृष्टि हुई थी; जिससे निखिल प्राणी उत्पीड़ित हुए थे। कोई समुद्र किनारे कोई गिरिगुहामें कोई अति निम्न जलप्राय भूमिमें मुनिवृत्ति अवलम्बनकर समय बिताने लगे। इससे पृथिवी ग्रामनगरशून्य अरण्यसे परिणत हुए। सर्व्वत्र नगरमें पुरमें पिशिताशनका प्रादुर्भाव हुआ; भूमण्डलमें सर्व्वत्र ही अभ्रभेदी वृक्षमात्र दिखाई देने लगे। इतस्ततः महाचोर लोग आकर चोरोंके ऊपर भी उत्पात करने लगे। प्राणरक्षार्थ मांस-भोजनकर प्राणियोंको जीवन धारण करना पड़ता था। इस तरह अराजकतानिबन्धन मर्त्त्यलोककी अनिष्टापात-सूचना मिलनेपर सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माकी सृष्टिचेष्टा विफल होने लगी। तब जगद्योनि ब्रह्माने प्रजाक्षय देख महाचिन्तान्वित हो विचार किया, "इस प्रजाक्षयसे यज्ञादि कार्य्य लोप होंगे; देखता हूं, यज्ञभुक् देवगण क्षीणप्राय होंगे।" वह यह सब सोच रहे थे, इसी अवसरमें देखा, साक्षात् क्षत्रियधर्म्मकी तरह रिपुञ्जय नामक वज्रपुरजयी वीर मनुवंशीय राजा अविमुक्त महाक्षेत्रमें

निश्चलेन्द्रिय हो तपस्या करते हैं। ब्रह्मा उनके पास जा सगौरव बोले, "हे महामते! राजन रिपुञ्जय। तुम इस समुद्र-पर्व्वतकाननवेष्टित इलावर्षका पालन करो; तुम्हें नागराज वासुकि, शीलसम्पन्ना अनङ्गमोहिनी नाम्नी नागकन्या भार्य्यार्थ प्रदान करेंगे। हे महाराज! स्वर्गके देवगण भी तुम्हारे प्रजापालनसे सन्तुष्ट हो रत्न और पुष्पराशि देंगे; इस लिये तुम्हारा नाम 'दिवोदास' होगा; तुम मेरे प्रसादसे दिव्यसामर्थ्य लाभ करोगे।" फिर राज-सत्तम रिपुञ्जयने ब्रह्माको यह बात सुनकर बहुत तरहसे ब्रह्माका स्तव किया और कहा, हे त्रिभुवन सृजनक्षम, महामान्य पितामह! आपरापर अनेक राजा हैं, उनसे कहिये; मुझसे क्यों ऐसी बात कहते हैं? ब्रह्माने कहा, तुम्हारे राज्य करनेसे देवता वृष्टि करेंगे, किन्तु पापिष्ट राजाके राज्यमें बरसात नहीं करते; इसी लिये तुमसे कहता हूं। राजाने कहा, हे पितामह! यह आपकी महान् अनुग्रह है; अतएव आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य की सही, किन्तु मुझे कुछ कहना है। वह यदि आप करें, तो मैं पृथ्वीमें निष्कण्टक राज्य कर सकता हूं। "हे पार्थिव! अपना मनोगत अभिलाष अविलम्ब प्रकाश करो, उसे मनमें सम्पन्न हुआ ही समझना, मेरा ऐसा कुछ भी नहीं, जो तुम्हारे अदेय हो।" राजाने कहा, हे सर्व्वलोक पितामह! यदि मुझे पृथिवीपति होना पड़े, तो देवगण मर्त्त्यलोकमें न रहकर स्वर्गमें अवस्थान करें। उनके वहां रहनेसे भूतलमें मेरा राज्य निःसपत्न होगा, इससे प्रजा सुख पावेगी। यह सुनकर विश्वस्रष्टाने "तथास्तु" कहा, नरेश्वर दिवोदासने शपथ द्वारा घोषणा की, "देवता लोग स्वर्गमें जावें, मेरे पृथिवी शासन कालमें वह लोग स्वर्गलोकमें ही रहें, नागगण प्रस्थान करें, मनुष्य सुखी हों।" इसके उपरान्त ब्रह्मा प्रणामकर विश्वेश्वरसे सब निवेदन किया ही चाहते थे, कि भगवान् ईशानने उनसे कहा, "हे लोकनाथ! आओ, मन्दर नामक भूधर कुशद्वीपसे आकर यहां बहुकालसे घोर तपस्या कर रहे हैं, उन्हें वर दे आवें" कहकर पार्व्वतीनाथ नन्दी भृङ्गीको अग्रसरकर वृषारूढ़ हो जहां मन्दर तपस्या करते थे, वहां गये। वहां उपस्थित हो प्रसन्नात्मा देवदेव वृषध्वजने उनसे कहा, "हे पर्व्वतराज! तुम्हारा मङ्गल हो, उठो उठो, वर ग्रहण करो। यह सुनकर उन पर्वतने देव देव त्रिलोचनको भूमिष्ठ हो भूयोभूयः प्रणामकर निवेदन किया, हे लीला विग्रहधारिन्! प्रणतैककृपानिधे शम्भो! सर्व्वज्ञ होकर भी मेरा अभिलषित नहीं जानते हैं—यह कैसा? हे शरणागतपालक! हे सर्व्व वृत्तान्तज्ञ! आप सर्व्वान्तर्यामी हैं, सर्व्वव्यापी सर्व्वकर्त्ता और

और आप ही सर्व्व हैं। हे प्रणतार्त्ति-भञ्जक! यदि इस अति शोचनीय, याचक पाषाणमयको आप अवश्य कर दिया चाहते हों, तो मैं अविमुक्त क्षेत्रके समान होनेकी इच्छा करता हूं,—आज, नाथ, कुशद्वीपमें मेरे मस्तकके ऊपर उमा सहित सपरिवार वास करिये, यही मेरी प्रार्थना है। यह सुनकर सबके अभीष्टदाता शम्भुने मानो क्षणकाल चिन्ता की. इसी समय ब्रह्माने अवसर देख प्रणामकर अग्रसर हो मस्तकमें अञ्जलिबन्धनकर कहा, हे प्रभो! जगत्पते! आपने प्रसन्न हो मुझे चतुर्व्विध सृष्टिकार्य्यमें नियुक्त किया है, मैंने भी आपकी अनुज्ञाक्रमसे यत्नपूर्व्वक वही सृष्टि की है। इससे फिर भूर्लोकमें साठ वर्ष अनावृष्टि होनेसे प्रजा नष्ट हुई है; अतीव अराजकता फैली है और जगत् घोर दुःखमें निमग्न हुआ है। यह देख मैंने मनुवंशीय रिपुञ्जय नामक राजर्षिको प्रजापालनके लिये राजत्वसे अभिषिक्त किया है। अभिषिक कालमें महातपा महावीर्य्य उन राजर्षिने मुझे इस समय-पाशसे बद्ध किया "आपकी आज्ञासे देवगण स्वर्गमें चले जावें, नागलोकमें नागलोग रहेंगे, तो राज्य करूंगा, नहीं तो नहीं," मैंने उनसे "तथास्तु" कहा है, इस समय जैसा कर्त्तव्य हो करिये। तब हे कृपानिधे! मन्दरको ऐसा वर प्रदान करिये, जिसमें वह नृपति भी प्रजापालन करें, यह कामना सिद्ध हो! विवेचनाकर देखिये, शतक्रतु और उनका राज्य, मेरे दो दण्ड कलामात्र स्थायी हैं; निमेषार्द्धमें निमिलनशील मर्त्त्य तो गिनतीमें नहीं। यह सुनकर भगवान् हरने विधिकी गौरव रक्षा भी की और चारु मन्दर शोभित मन्दर-पर्व्वतको निर्म्मल बोधकर उनकी प्रार्थना स्वीकृत की। जम्बूद्वीपमें जैसी काशी सदा निर्व्वाणदायिनी है, उसी तरह कुश-द्वीपमें मन्दरगिरि बहुकाल निर्व्वाणदायक रहे। मन्दर पर्व्वतपर जानेके समय भगवान् शिवने, साधकोंकी सर्व्वसिद्ध और काशीस्थ मृत जन्तुओंको मो-सम्पद् देनेके लिये और क्षेत्रकी रक्षा करनेके लिये विधिके भी अगोचर निज मूर्त्तिमय लिङ्ग स्थापन कर रखा; सुतरां मन्दराद्रिमें गमन करनेपर भी पिनाक-पाणिने काशी त्याग नहीं की, वरं लिङ्ग-रूपमें अवस्थान करते थे, अतएव इसका नाम "अविमुक्त" हुआ। पहले इसका नाम "आनन्दवन" था, किन्तु तबसे ही काशी अविमुक्त नामसे भूतलमें विख्यात हुई। इस तरह क्षेत्रका नाम अविमुक्त होनेसे लिङ्गका नाम भी वही हुआ। इन दोको प्राप्त करनेपर मनुष्यको फिर गर्भवास करना नहीं पड़ता। इस अवि-मुक्त क्षेत्रमें अविमुक्तेश्वर लिङ्गका दर्शन करनेसे जीवगण समुदय कर्म्मपाशसे मुक्त होते हैं। जगत्में सभी विश्वेश्वरकी

अर्चना करते हैं, किन्तु विश्वकर्त्ता वह विश्वेश्वर, भक्ति मुक्तिदाता इन अविमुक्तेश्वर लिङ्गको अर्चना करते हैं। पूर्व्वकालमें किसीने कहीं भी किसीका लिङ्ग स्थापन नहीं किया, अतएव लिङ्गका आकार कैसा है, यह हमलोगोंमें कोई नहीं जानते थे। ब्रह्मा विष्णु प्रभृति देवगण और वसिष्ठादि ऋषिगणने अविमुक्तका आकार देख अपरापर लिङ्ग स्थापन किया था। वह अविमुक्त लिङ्ग ही आदि लिङ्ग है, इन्हीसे भूतलमें लिङ्गान्तरकी उत्पत्ति हुई है। इन अविमुक्तेश्वर लिङ्गका नाम सुननेसे मनुष्य आजन्म सञ्चित पापसे च्चणकालमें असंशय मुक्त होते हैं। दूरस्थित व्यक्ति यदि इनका नाम स्मरण करें तो जन्मद्वयाज्जित पापसे तत्‌च्चणात् मुक्ति लाभ करेंगे। अविमुक्त च्चेत्रमें अविमुक्त लिङ्ग देखनेसे त्रिजन्मकृत पाप विदूरित होता और पुण्य सञ्चय होता है। इनके स्पर्शसे पांच जन्मकी अज्ञानकृत पापराशि दूर होती है। इनकी अर्चना करनेसे मनोभीष्ट सिद्धि होती है। फिर जन्मभागी नहीं होना पड़ता; यथाशक्ति और यथामति जो इनका स्तव अर्च्चना और प्रणाम करते हैं वह व्यक्ति जगतमें अर्च्चित स्तुत और और वन्दित होते हैं। काशीमें स्वयं विश्वनाथार्च्चित इन अनादि अविमुक्त लिङ्गकी भक्तिके साथ सेवा करना मनुष्यका कर्त्तव्य है। इस पृथिवीमें नाना तीर्थस्थानमें लिङ्ग हैं, वह माघ मासकी चतुर्द्दशीमें इन अविमुक्त लिङ्गके पास आकर रहते हैं। जो व्यक्ति इन लिङ्गके निकट, माघमासकी कृष्णा चतुर्द्दशीरात्रि जागरण करेंगे, वह सर्व्वदा जागरूपयोगिजनके भक्तिभाजन होते हैं। नाना तीर्थके लिङ्ग सकल चतुर्व्वर्ग फलदायक होनेपर भी माघमासकी कृष्णा चतुर्द्दशीमें यहां अविमुक्त लिङ्गकी उपासना करेंगे। अविमुक्त लिङ्गके ऊपर दृढ़भक्तिरूप वज्र यदि मनुष्यके पास रहे, तो सञ्चित पापरूप पर्व्वतके भयसे उन्हें भीत नहीं होना पड़ता। यह लिङ्ग चतुर्व्वर्ग फल प्रदान करते हैं; सुतरां पापियोंके अर्ज्जित पापच्चय पानेमें सर्व्वदा ही दिखाई देते हैं। जिन्होंने विश्वेश्वरके पीठस्थानपर अविमुक्त महादेव लिङ्गको नहीं देखा, वह मोहान्ध हैं और जो व्यक्ति दर्शन करते हैं, उन्हें देखकर कृतान्तदेव दूर हीसे हाथजोड़ प्रणाम करते हैं। जिन्होंने इन महालिङ्गका दर्शन किया है और हाथसे स्पर्श किया है, वह चित्रनिर्म्माण धन्य और हस्त सार्थक हैं। जो मनुष्य पवित्र हो नियमपूर्व्वक त्रिसन्ध्या इनका जप करते, वह स्थानान्तरमें मृत होने पर भी काशीकी मृत्युका फल लाभ करेंगे। जो इन महालिङ्गका दर्शनकर ग्रामान्तरमें जाते हैं; उनकी अविलम्ब कार्य्यसिद्धि

होती है और निर्विघ्न घरमें प्रत्यागत होती हैं।

एकोनचत्वारिंश अध्याय॥ ३९॥

चत्वारिंश अध्याय।

गृहस्थधर्म्म।

स्कन्दने कहा, मैंने अविमुक्तेश्वरका माहात्म्य तुमसे कहा; अब यदि और कुछ सुननेकी इच्छा हो, तो फिर कहूंगा। अगस्त्यने कहा, हे षण्मुख। अविमुक्तका माहात्म्य बार बार सुनकर मेरे कर्णद्वय सार्थक हुए हैं सही, किन्तु तब भी मेरी परितृप्ति नहीं हुई। अतएव कहिये, किस उपायसे अविमुक्तेश्वर लिङ्ग और अविमुक्तक्षेत्र प्राप्त किया जा सकता है? स्कन्दने कहा, हे महामते कुम्भज। जिससे इन श्रेयोदाता अविमुक्तकी प्राप्ति होती है, वह कहता हूं सुनो। हे विप्र! जिस पुण्यप्रभावसे सब अभीष्ट सिद्ध होते हैं, उस पुण्यका मूल स्मृतिमार्गसेवा है। हे मुने! जो पुरुष इस स्मृतिविहित पथसे विचरण करते हैं, उनकी संसर्गसे कलि और कालभय नष्ट होता है। उक्त कलि और काल, वधके लिये सदा छिद्रान्वेषणमें रत हैं। जो ब्राह्मण, निषिद्ध आचरण करते और वैध कार्य्य नहीं करते, उन्हींका वह यह छिद्र पा निग्रह करते हैं। अतएव, पहले तुमसे निषिद्ध आचरणकी बात कहता हूं; इन सबके उसको परिहार करनेसे मनुष्यकी नरकगति नहीं होती। गृहस्थ व्यक्ति पलाण्डु, विड्वराह, बहुबारक फल, (१) लशुन, गृञ्जन, गोपीयूष, (२) तण्डुलीय, (३) और छत्रा (४) भक्षण न करेंगे। छेदनार्थ वृक्षनिर्य्यास, पायस, अपूप, (१) कुली देवता (२) और पितरोंका अनुवेदित मांस और वत्सहीना या स्थानान्तरितवत्सा गायके दुग्ध भक्षणमें विरत होंगे। अश्वादि एक खुरविशिष्ट पशुका दुग्ध ऊंट और मेषदुग्ध पान न करेंगे। रातके समय दही और दिनमें नवनीत भक्षण न करेंगे। टिट्टिभ, चटक, हंस, चक्रवाक, प्लव, (३) बक, सारस, ग्राम्यकुक्कुट, शुक, खञ्जन और शरारि, (५) प्रभृति जालपाद, मद्गुण्ड (६) प्रभृति मत्स्यभक्षक और श्येनादि (७) मांसाशी पक्षी भोजन न करेंगे। मत्स्य और सब जीवोंका मांस दोनो ही समान है, अतएव मत्स्य सर्व्वतो भावसे त्याग करेंगे। किन्तु बोयाल या रोहू मत्स्य, दैव और पैत्रादिकर्म्ममें नियुक्तकर भोजन कर सकते हैं। जो मांस भक्षण करते हैं, वह शशक, शल्यक, (८) कच्छप, सेधाख्य, पशु, गोधा और पशुपक्षी भोजन कर सकते हैं। यदि दीर्घायु होने और स्वर्गलाभ करनेकी कामना हो, तो यत्नपूर्व्वक मांस त्याग करेंगे; कारण यज्ञकार्य्यमें पशुवध ही

स्वर्गकी अनुकूल है और कार्य्यमें नहीं। खण्ड (८) तैलादिस्नेहनिर्म्मित और सब पर्य्युषित द्रव्य त्याग करेंगी। मांस भक्षण कदापि अभिप्रेत नहीं, तथापि श्राद्धमें, यज्ञमें, औषधरूपमें, प्राणात्यय स्थलमें या ब्राह्मणके अनुग्राक्रमसे मांस भक्षण करनेसे दोषग्रस्त होना नहीं पड़ता, लोभवश मांस भक्षण करनेसे गुरुतर पाप होता है; यहांतक, कि जो मृगया द्वारा जीविका करना चाहें, उन्हें वैसा पाप नहीं होता। ब्रह्माने यज्ञके लिये मृग, पशु, वृक्ष और औषधिकी, सृष्टि की है, अतएव ब्राह्मण उन्हें हनन करनेसे हिंसा-पापमें लिप्त न होंगी, उनलोगोंकी भी सद्-गति होगी। देवता, पितृलोग, मधुपर्क और यज्ञके लिये प्राणिहिंसा हिंसामें गण्य नहीं। किन्तु दूसरी तरहकी हिंसा करनेसे निस्तार नहीं होता। जो मूढ़ व्यक्ति आत्मपुष्टिके लिये प्राणिहिंसा करते हैं, उन दुराचारि-योंको इहकाल और परकालमें कहीं भी सुख नहीं मिलता। अनुमतिदाता, वधकारी, अस्त्र द्वारा खण्डखण्डकारी, क्रयकारी, वि-क्रयकारी, पाचक, परिवेष्टा और भोक्ता इन आठ मनुष्यको घातक कहते हैं। जो मनुष्य शत वर्षतक प्रति वर्ष अश्वमेध यज्ञ करते हैं और जन अवैध मांस-भक्षण नहीं करते, उन दोनोमें शेषोक्त व्यक्तिको ही विशिष्ट फल होता है। सुखैषी व्यक्ति दूस-रेको भी अपनी तरह देखेंगी, सुखदुःख जैसे अपने लिये, वैसे ही परायेके लिये भी समझेंगी। परायेके सुखसे सुखी और दुःखसे दुःखी होनेसे अपने लिये परायेसे भी उसी तरह करानेकी सम्भावना होती है। इस जगत्में बिना दुःखके अर्थागम नहीं होता; अर्थहीन व्यक्तिके क्रियाकलापकी सम्भावना नहीं; क्रियाकलाप न करनेसे धर्म्मार्ज्जन नहीं होता; धर्म्महीन होनेसे सुखकी सम्भावना कहां? सुख सबका ही वाञ्छनीय है सही, किन्तु धर्म्मसे ही उसकी उत्पत्ति है; अतएव यत्नपूर्व्वक ब्राह्मणादि चतुर्व्वर्णको अर्ज्जन करना ही कर्त्तव्य है। न्यायार्ज्जित अर्थसे परलो-कका कार्य्य करेंगी और विशुद्धकालमें विशु-द्धभावसे यथाशास्त्र सत्पात्रको दान देंगी। जो अविधिक्रमसे सत्पात्रको दान देते हैं, उनका दान ही केवल वृथा नहीं होता, फल भी विनष्ट होता है। जो विपद्ग्रस्तके ऋणमोचन और कुटुम्बपालनके लिये दान करते हैं, उनका वह दान निःसंशय इह-काल और परकालमें अक्षय होता है। जो व्यक्ति निज अर्थसे पितृमातृहीन जनका उपनयन, विवाह प्रभृति संस्कार कर देते हैं, उन्हें अनन्त श्रेयोलाभ होता है। एक द्विजको स्थापन करनेसे जो पुण्यलाभ होता है, वह असंख्य अग्निहोत्र या अग्निष्टोम प्रभृति यज्ञ करके भी नहीं प्राप्त होता। जो व्यक्ति अनाथ युवा ब्राह्मणका विवाह करा देते हैं, वह इहकालमें सुखी और

परकालमें अक्षय स्वर्गवास पाते हैं। जो कन्या पित्रालयमें अपरिणीत अवस्थामें रजोदर्शन करे, उसका पिता भ्रूणहत्या पापसे पापी होता और वह कन्या वृषली (शूद्रा) हो जाती है। जो अज्ञानवश उक्त कन्यासे विवाह करते हैं; उनके साथ सम्भाषण या पंक्तिभोजन कभी न करेंगे. कन्या और वर दोनोंका दोष बताकर पिता सम्बन्ध प्रणयन करेंगे, नहीं तो पाप ग्रस्त होना पड़ेगा। नारीगण सदा ही पवित्र हैं, इन लोगोंको किसी तरहसे दोष नहीं होता; कारण, प्रतिमासमें जो रजः होती है, वह इनका पापविनष्ट करता है। अग्नि, चन्द्र और गन्धर्व्व यह तीन जन पहले ही उनका भोग करते हैं; पीछे मनुष्य भोग करते हैं; इस मतमें यह लोग किसी तरह भी दोषी नहीं। सोम स्त्रियोंके शुचित्व हैं, अग्निने सर्व्वमेध्यता और गन्धर्व्वने कल्याणराशि दी है; अतएव वह सदा पवित्र हैं। अग्नि रजःकालमें, चन्द्र रोमोद्गममें और गन्धर्व्व स्तनोद्भव समयमें कन्याका भोग करते हैं, इसलिये इनसे पहले इसका सम्पादन करना उचित है। रोमदर्शन कालके विवाहसे सन्तान नष्ट होती है, यौवन चिह्न प्रकाशसे वंश नहीं रहता और रजः प्रकाश कालमें पितृ-मरण होता है, इसलिये इन इन अवस्थाको परित्याग करेंगे। अतएव कन्यादानके फलप्रार्थी हों, तो रजोदर्शनसे पहले कन्या दान देंगे; नहीं तो दाताको फल प्राप्त नहीं होता और ग्रहीता अधःपतित होते हैं। सोम प्रभृति देवताओंके भोगसे पहले कन्यादानका फल होता है; इसके बाद दान देनेसे दाताको स्वर्गलाभ नहीं होता। शय्या, आसन, यान, नेपालदेशीयकम्बल, नासिका मुख, कुश और समस्त यज्ञपात्रको पण्डित लोग कभी दूषित नहीं बताते। दोहनके समय गौके बछड़ेका मुख, पक्षि-मुखभ्रष्ट फल, रतिकालमें नारीका मुख और वधके लिये मृगग्रहण कालमें कुक्कुरका मुख भी शुचि जावेंगे। छाग और अश्वका मुख गोपृष्ठ, ब्राह्मण चरण और स्त्रियोंका सर्व्वाङ्ग पवित्र है। बलपूर्व्वक उपभोग करने या चोरहस्तगत होनेसे भी नारीको त्याग न करेंगे; इनका त्याग शास्त्रमें भी नहीं दिखाई देता। अम्लयोगसे ताम्रपात्रका, भस्म द्वारा कांस्यका रजो द्वारा नारीका और प्रवाह रहनेसे नदीकी शुद्धि होती है। जो नारी मनमें भी कभी दूसरे पुरुषकी चिन्ता नहीं करतीं, वह इसकालमें कीर्त्ति और परकालमें उमाके साथ एकत्र सुखभोग करती हैं। पिता, पितामह, भ्राता, सकुल्य, जननी, यह कन्या दानके अधिकारी हैं। इन एक एकके नाशसे दूसरे दूसरे कन्यादान करेंगे; न करनेसे प्रति ऋतुमें भ्रूणहत्याका पाप होगा। इन लोगोंके अभावसे कन्या स्वयंवरा होगी। स्त्रीके

पितृगण निराश हो चले जाते हैं। व्यभिचारिणी रमणीको महिषी कहते हैं; उस दुष्टा नारीकी कामना, जो पुरुष पूर्ण करते उन्हें माहिषिक कहते हैं। जो नारी अपना वृष यदि त्यागकर परवृषसे रमण करती हैं, उन्हें वृषली कहते हैं, नहीं तो शूद्रपत्नी वृषली नहीं है। जबतक अन्न उष्ण रहे और मौनावलम्बनकर भोजन करते हों और जबतक हविर्गुण व्यक्त न किया हो, तबतक पितृगण भोजन करते हैं। विद्या और विनयसम्पन्न श्रोत्रियके घर आनेपर परमगति प्राप्त होगी कहकर ओषधिगण आनन्दसे नृत्य करते हैं और शौचाचारभ्रष्ट वेदवर्ज्जित ब्राह्मणके आनेपर हमने कौन पाप किया हैं, जो हमें इसके उदरमें जाना पड़ा कहकर रोते हैं। जिनका उदरगत अन्न वेदाभ्याससे जीर्ण होता है, वह व्यक्ति दाताके ऊर्द्धतन और अधस्तनके दश पुरुषका उद्धार करते हैं। स्त्री सर्व्वमुण्डन, गोवषका अनुगमन, रातके समय गोष्ठमें वास और वैदिक मन्त्र न सुनेंगी। स्त्रियोंका मस्तक मुण्डन करनेमें दो उंगली परिमित केश छेदन करेंगी, और समस्त केश रहने देंगी। किन्तु राजा, राजपुत्र या वेदपारदर्शी ब्राह्मण, सबको ही सर्व्वमुण्डन करना होगा न करनेसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है। केशकी रक्षा करनेसे दूना प्रायश्चित्त होगा और विद्वान ब्राह्मणको द्विगुण दक्षिणा देनी पड़ेगी। जो व्यक्ति विवाहाग्नि ग्रहण न कर अपनेको गृहस्थ समझते हैं, उनका भोजन करना उचित नहीं और उन्हें वृथापाक कहते हैं। अनग्निक अकृतदार ज्येष्ठभ्राताके होनेपर भी जो व्यक्ति विवाह और अग्निग्रहण करते हैं, उन्हें परिवेत्ता और उनके ज्येष्ठको परिवित्ति कहते हैं। उक्त परिवेत्ता, परिविवित्ति और जिस नारीसे विवाह करें, वह परिविन्ना स्त्री हैं, इन सबोंके दाता याजकके सहित नरकगामी होते हैं। ज्येष्ठभ्राता यदि क्लीव, देशान्तरस्थ, मूक, संन्यासी, जड़, कुब्ज, खर्व्व और पतित हो, तो ऐसे विवाहमें दोष नहीं है। जो अर्थके लोभसे वेद बेचते हैं, वह उसमें जितने अक्षर हों, उतने भ्रुणहत्या पापके पापी होते हैं। जो व्यक्ति संन्यास अवलम्बनकर फिर मैथुनसेवा करते हैं, वह षष्टिसहस्र वर्षतक विष्ठाके कृमि होकर रहते हैं। शूद्रान्न, शूद्रसहवास, शूद्रके साथ एकत्र उपवेशन और शूद्रसे कोई विद्यालाभ करना यह सब ज्वलन्त ब्राह्मणको भी पतित करते हैं। जो अज्ञानान्ध ब्राह्मणगण, शूद्रसे भिक्षा ग्रहणकर पाक करते हैं, वह ब्रह्मतेजोभ्रष्ट हो भीषण नरकमें जाते हैं। घृतादि स्नेह पदार्थ, व्यञ्जन और लवण हाथपर न देंगे; देनेसे दाताको फल नहीं होता और भोजनकर्त्ता पाप भोगते हैं। लौहमयपात्रमें अन्न न देंगे; देनेसे भोजनकारी विष्ठा भोजन करते और

द्वारा नरकगामी होते हैं। उंगली द्वारा दन्तधावन, (दूधके साथ) केवल लवण भोजन और मृत्तिकाभक्षण गोमांसभक्षणके समान जानेंगे। जल, पायस, भिक्षा, घृत और लवण हाथमें देनेसे ग्रहण न करेंगे; कारण वह गोमांसकी तरह अभक्ष्य है। यदि एक मूर्ख सामने हो और गुणवान् व्यक्ति दूर हों, तो उसे अतिक्रमकर गुणसम्पन्न व्यक्तिको ही दान देंगे; मूर्खको अतिक्रम करनेसे कोई पाप नहीं होता। यदि वेदज्ञानशून्य विप्र वहां हों, तो उन्हें भी अतिक्रम करनेसे कोई पाप नहीं होता; कारण प्रज्वलित अग्नि परित्यागकर कोई भस्ममें आहुति नहीं देता। जो व्यक्ति सन्निहित वेदाध्ययनपर ब्राह्मणको भोजन और दान विषयमें अतिक्रम करते हैं, उनका सप्तकुल पर्य्यन्त दग्ध होता है। (गोपालक रखवाला) वणिकवृत्ति, शिल्पजीवी, नटवृत्तिजीवी, भृत्यभावाश्रित और वृद्धिजीवी (सूदखोर) ब्राह्मणके प्रति शूद्रवत् व्यवहार करेंगे। देवद्रव्यके विनाशसे ब्रह्मस्वहरणमें और ब्राह्मणके अतिक्रमसे कुल आयु, विनष्ट होता है। "गो ब्राह्मण और अग्निको दान न करो" जो कहते हैं, वह शतवार तिर्य्यक योनिको प्राप्त हो चाण्डाल होकर जन्म लेते हैं। वाक्यसे "देंगे" स्वीकारकर कार्य्यमें परिणत न करनेसे, उसे इहलोकका और परलोकका धर्म्म-सङ्गत ऋण समझेंगे। यज्ञशेषको अमृत और भोजनशेषको विघस कहते हैं; प्रतिदिन वह अमृत और विघस भोजन करेंगे। वस्त्रको वाम अंशसे भ्रष्ट ही नाभिदेशमें अवस्थान करनेको एकवस्त्र कहते हैं, देव और पैत्र कार्य्यमें वह वर्ज्जन करेंगे। ब्राह्मणश्रेष्ठ स्नानके बाद पितृतर्पण करते, इसीसे वह सम्पूर्ण पितृयज्ञका फल प्राप्त करते हैं। जो व्यक्ति भोजनमें दोनो हाथ धोकर एक गण्डूष जल पान करते हैं, वह दैव, पैत्र और अपनेको दूषित करते हैं। गण, गणिका, ग्रामयाजी और प्रथम गर्भ कालमें स्त्रियोंका अन्न भोजन करनेसे चान्द्रायण व्रत करना पड़ता है। जिस दुरात्माके घर ब्राह्मण, पक्ष और महीनेमें भोजन नहीं करते, उनका अन्न भक्षण करनेसे चान्द्रायण व्रतका आचरण करेंगे। यज्ञकारी, यज्ञमें, दीक्षित, यति, ब्रह्मचारी-कर्म्मकारी ऋत्विक्गणको जननाशौच नहीं होता। अजीर्ण प्रकाश, वमन, श्मश्रुवपन, मैथुन, दुःस्वप्नदर्शन और दुर्ज्जनका स्पर्श होनेसे स्नान करना चाहिये। श्मशानवृक्ष, श्मशानयूप, शिवनिर्म्माल्यभोजी और वेदविक्रयी व्यक्तिको स्पर्श करनेपर सवस्त्र जलमें प्रवेश करेंगे। अग्निगृहमें, गोस्थानमें और देवब्राह्मण-सन्निधानमें वेदाध्ययन, भोजन, पान और पादुका, परित्याग करेंगे। खल और क्षेत्रगत धान्य, वापी और कूपस्थित जल और गोष्ठगत

दुग्ध यह सब अग्राह्य मनुष्यका होनेपर भी ग्रहण कर सकेंगे। मस्तक प्रावरणसे वेष्टन, दक्षिणास्य हो और पादुका पहनकर जो भोजन करते हैं, वह राक्षसभोजन करते हैं। मण्डल न कर भोजन करनेसे राक्षसपिशाचादि नृशंस लोग अन्नका रस हरण कर लेते हैं। ब्रह्मादि देवगण और वसिष्ट प्रभृति महर्षिगण मण्डलका आश्रय करते हैं; अतएव भोजनके समय मण्डल करेंगे, ब्राह्मण चतुष्कोण मण्डल करेंगे; क्षत्रिय त्रिकोण, वैश्य वर्त्तुल और शूद्रके अभ्युक्षण करनेसे ही होगा। क्रोड़-देशमें, पाणितलमें और जीर्णवस्त्र, आसन और शय्याके ऊपर भोजनपात्र रख और मलादि दूषित हो भोजन न करेंगे। धर्म्मश्व'स्वरूप रथारोही, वेद खड्गधारी ब्राह्मणगण, क्रीड़ार्थ भी जो कहें, उसे परम धर्म्म मानेंगे। धर्म्मकामनाके बाद रात्रिकालमें दधिसंयुक्त भ्रष्ट द्रव्य भोजन न करेंगे; भोजन करनेसे उनके धर्म्मकी हानि और व्याधिपीड़ा होती है। फाणित, दुग्ध, जल, लवण, मधु और काञ्जिक (कांजी) हाथसे देनेपर कृच्छ्रचान्द्रायणका व्रत करेंगे। जो धर्म्मज्ञ व्यक्ति गन्ध, आभरण और माल्य प्रदान करते हैं, वह जिस जिस योनिमें जन्म लेते, वहां ही सन्तुष्ट और उत्तम गन्धयुक्त होते हैं। नीलावर्णसे रञ्जित वस्त्र दूरसे परिहार करेंगे, किन्तु शय्यापर स्त्रियोंकी क्रीड़ार्थ संयोगसे दोष नहीं होता। पालनमें, विक्रयमें उस धनसे जीविका निर्व्वाह करनेसे ब्राह्मण अपवित्र होते हैं, तीन बार कृच्छ्र-व्रत न करनेसे शुद्धि नहीं होती। जो व्यक्ति नीलावस्त्र धारण करते हैं, उनका स्नान, दान, जप, होम, वेदपाठ, पितृतर्पण और पञ्चमहायज्ञ वृथा है। जो ब्राह्मण अपने अङ्गमें नीला वस्त्र धारण करते हैं, उस वस्त्रमें जितने सूत होते, उतने दिन वह नरकमें वास करते और अहोरात्र उपवासकर पञ्चगव्य भक्षणसे उनकी शुद्धि होती है। ब्राह्मणका अन्न अमृत, क्षत्रियका अन्न पयः, वैश्यका अन्न अन्न और शूद्रके अन्नको रुधिर कहते हैं। वैश्वदेव कार्य्यमें, होम, देवार्च्चना, जप और ऋक्यजुःसाम-वेदसंयोग ब्राह्मणका अन्न अमृत होता है। व्यवहारानुरूप न्यायानुसार अर्ज्जन होता है इसलिये प्रजापालन निबन्धन क्षत्रियके अन्नको "पयः" कहते हैं। कृषि, गोपालन और वाणिज्य प्रभृतिसे हलकर्ष-रूप यत्नसे वैश्यका अन्न उत्पन्न होता है, अतएव उसे "अन्न" कहते हैं। अज्ञानतिमिरान्ध मद्यपानरत वेदव-र्ज्जित होनेसे शूद्रका अन्न "रुधिर" नामसे विख्यात है। ज्ञानी व्यक्ति सामान्य कारणसे वृथा शपथ न करेंगे; वृथा शपथ करनेसे इहकाल और परकाल विनष्ट होते हैं। स्त्रियोंसे, विवाह विषयमें गोभक्ष विषयमें, धनक्षयकालमें और ब्राह्मण-

ग्यादिके उपकार स्थलमें शपथ करनेसे पाप नहीं होता। ब्राह्मणको सत्यप्रमाणसे क्षत्रियको यान और अस्त्रस्पर्शसे, वैश्यको गो, बीज और काञ्चनस्पर्शसे और शूद्रको समस्त पातक द्वारा शपथ करावेंगे। इनको अग्निआहार करावें जलमें निमग्न करें अथवा स्त्री पुत्रका मस्तक स्पर्श करावेंगे। यम यमपद वाच्य नहीं हैं, आत्माको यम कहते हैं; जिस व्यक्तिने वह आत्म-संयम किया है, यम भी उसका कुछ नहीं कर सकते: तीक्ष्ण असि, विषधर सर्प अथवा नित्य क्रुद्ध शत्रु वैसे भयानक नहीं हैं, जैसे भयप्रद असंयतात्मा होते है लोग जो क्षमाशीलको असमर्थ समझते हैं, यही एक दोष उनका है, दूसरा दोष दिखाई नहीं देता। शब्दशास्त्रमें रत, रमणीय गृहप्रिय, भोजनाच्छादनपरायण अथवा लौकिक वृत्तिग्रहणासक्त व्यक्तिको मुक्तिलाभ नहीं होता। जो व्यक्ति सुशील, जितेन्द्रिय, वेदाध्ययनमें रत और अहिंसक हैं, उन्हें निःसंशय मोक्षप्राप्ति होती है। किन्तु काशीमें शील, इन्द्रियजय, योग या सेवार्चना कुछ भी न चाहिये; इन सबके बिना ही अनायास मुक्ति होती है। विश्वेश्वरकी सेवा ही योग है। काशी-पुरीमें निवास ही तपस्या है, वहांका दान ही व्रत और उत्तरवाहिणी गङ्गाका स्नान ही नियम है। स्कन्दने कहा, जो व्यक्ति न्यायार्जितधन, तत्त्वज्ञाननिष्ठ, अतिथिसेवा-परायण, आज्ञाकारी और सत्यवादी हैं, वह गृहस्थ होनेपर भी इस काशीमें मुक्ति पाते हैं। इस काशीमें गृहस्थ दीन, अन्ध, कृपण और याचकोंको विशेषतः अन्न देनेसे और गृहस्थोचित कर्म्म करनेसे मुक्तिलाभ करते हैं। ऐसे आचरणशील मनुष्यके प्रति काशीनाथ प्रसन्न होते हैं और विश्वे-श्वरके प्रसादसे काशीप्राप्त होनेसे मुक्ति होती है। इस काशीको सेवा करनेसे ही सर्व्वतीर्थमें स्नान, सर्व्वयज्ञका अनुष्ठान अशेषविध दान हो जाता है।

चत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंश अध्याय।

योगाभ्यासकीर्त्तन।

स्कन्दने कहा, इस तरह गृहस्थके सब सदाचार प्रतिपालित होनेपर, वह जब देखें, कि उनकी देहका मांस समुदाय लोल हुआ है, केश पक जानेपर भी मस्तक शुभ्र हुआ है, तब वह तृतीय (वाणप्रस्थ) आश्रमका आश्रय लेंगे। गृही पुत्रका पुत्र देखकर पत्नीके रक्षणावेक्षणका भार उपयुक्त पुत्रको समर्पणकर या पत्नीको साथ लेकर वनवासी होंगे! तब वह वाणप्रस्थी चर्म्म-वास परिधानकर अपने नित्य होम-साधन अग्निकी र करेंगे। मुनिजनोचित वन्य फलमूलादि द्वारा ही उनकी जीवनयात्रा निर्व्वाह होगी। वह, नख, लोम, श्मश्रु प्रभृति कर्त्तन न करके

मस्तकपर विपुल जटाभार वहनकर सायं और प्रभातके समय स्नान करेंगी और शाक मूल फलादि द्वारा ही नित्य पञ्च-यज्ञानुष्ठायी हो, उसके द्वारा ही भिक्षुक या अतिथिगणका परितोष करेंगी। बाण-प्रस्थाश्रमी किसीसे भी कुछ ग्रहण न करेंगी, किसीको कोई वस्तु, सङ्कल्पकर दान भी न देंगी,वह नियत वेदान्त और वेदपाठतत्पर रहकर अपनी वैवाहिक अग्निसे नित्य यथा-विधि आहुति प्रदान करेंगी और निजा-यासे समाहृत फलमूलादि द्वारा हवनीय हविका प्रयोजन निर्व्वाहकर स्वयंकृत लवण और फलोद्गम स्वहद्रव्य ही भक्षण करेंगी। बाणप्रस्थाश्रमी सब तरहके मांसाहारसे विरत रह वर्षके आश्विनमासमें पूर्व्वाहृत शाकमूलफलादि भक्षणसे भी निवृत्त होंगी और ग्राम्य फल मूल और कर्षणजात अन्न परित्याग करेंगी। दन्तोलुखलिक या अश्मकुट्टीसे ही दिन यापन करेंगी। प्रात्य-हिक अन्न ही प्रतिदिन सञ्चय करेंगी, अथवा एक मासोपयोगी अन्न पहलेसे ही सञ्चित रखेंगी, या अपने साध्यानुसार भावी मास-त्रयका या छः मासका उपयोगी फल-मूलादि पहलेसे ही सञ्चित रखेंगी। वह रातमें आहार या एक दिवस अन्तर आहार, या तीन दिन अन्तर आहार, चान्द्रायणव्रत और पक्षके अन्तमें या महीनेके अन्तमें आहार करेंगी या वैखानसवृत्ति अवलम्बनकर केवल शाकमूलफलाशी हो तपश्चरणसे देहको शुष्ककर सदा पितृगण और देवताओंको तृप्ति साधन करेंगी। नित्य होमीय अग्निको साथ ले किसी स्थान निर्द्दिष्टमें, वासस्थानकी तरह आश्रय न कर सर्व्वत्र विचरण करेंगी, प्राण धारणके लिये केवल बनवासी तपस्वियोंसे भिक्षा लेंगी या आहारके समय केवल ग्राममें जाकर अष्टग्रास मात्र अन्न भिक्षाकर भोजन करेंगी। इस तरह बनवासी निज आश्रम-धर्म्मका प्रतिपालन करनेसे ब्रह्मलोकमें भी पूजित होंगी। इसतरह जीवनका तृतीय भाग बनमें अतिवाहनकर चतुर्थभागके प्रारम्भमें ही सर्व्वविध सङ्ग परिहारपूर्व्वक प्रव्रज्या ग्रहण करेंगी। देवऋण, पितृ-ऋण और मनुष्यऋण परिशोध और पुत्रो-त्पादन न करके या यज्ञानुष्ठानमें निरत रहकर, जो व्यक्ति, प्रव्रज्या-आश्रममें अभिलाष रखते हैं, वह निश्चय ही नरक-गामी होते हैं। जो व्यक्ति, अन्त्याश्रमी हो प्राणियोंके किसी तरहके भयका कारण न हो, यावत् जीव ही उसे अभय प्रदान करते हैं जानकर अन्त्याश्रमी आत्मज्ञान लिप्सु हो अग्नि और गृह परित्यागकर अकेले असहाय अवस्थामें नियत विचरण करनेमें समर्थ होते हैं। वह केवल आहारार्थ ग्राममें प्रवेश करेंगी। कभी जीवन या मृत्यु कामना न करके, भृत्य जैसे प्रभुनिर्द्देशानुवर्त्ती होता है, उसी तरह, केवल कालकी प्रतीक्षा करेंगी। एक

मुक्तिके अभिलाषी होकर, विषमूत्रमें समज्ञान रखकर, सर्व्वत्र ममताशून्य वृक्ष-मूलमें वास करेंगे। ध्यान, शौच, भिक्षा और निर्ज्जनवास, इन चतुर्व्विध कर्म्मके सिवा यतिके लिये और कोई प्रधानकर्म्म नहीं है। उक्त अन्त्याश्रमी आषाढ़ादि मास-चतुष्टयमें कहीं न जावेंगे; कारण, उस समय गमनागमनसे वीजाङ्कुर और कितने ही जीवोंकी हिंसा होती है। यति, जन्तुओंके ऊपर पैर दिये चलेंगे, वस्त्रशोधित जल पान करेंगे, मधुर गम्भीर वाक्य कहेंगे और कभी किसीसे क्रुद्ध न होंगे; और किसीकी अपेक्षा न कर, निर्द्दिष्ट आवासविहीन, जितेन्द्रिय, ब्रह्मा-नुध्यानपर और आत्मपात्र सहाय हो, केश नखादि छेदन न करके, सदा अवस्थान करेंगे। भिक्षु, कुसुम्भरञ्जित वस्त्र परि-धान, दण्डधारण और भिक्षालब्ध अन्न भक्षणकर, यशोलाभवासना परिहारकर अलावु, दारु मृत्तिका या वेणुनिर्म्मित पात्र व्यवहार करेंगे; तैजस पात्र कभी न ग्रहण करेंगे। यति व्यक्ति यदि एक मात्र कपर्द्दक भी ग्रहण करते हैं, तो उन्हें प्रतिवार सहस्र गोवधका पाप होता है; यह श्रुतिमें कहा है। और यदि किसी कामिनीकी कामुक हो हृदयमें धारण करते हैं, तो दो कोटि ब्रह्मकल्पकाल कुम्भीपाक नरक भोगते हैं, दिन रातमें यदि एकबार भी भिक्षार्थ विचरण करें, तब भी अधिक ग्रहण न करेंगी। जब गृहस्थका गृह; पाकधूमरहित मूषल-ध्वनिशून्य और पाकयोग्य अङ्गारविहीन हो और आहारके उपरान्त उच्छिष्ट शराव सब परित्याग होगा, यति नित्य उसी समय भिक्षा करेंगे। यतिके आहारसङ्कोच और निर्ज्जनवासकर जितेन्द्रिय और राग-द्वेषादिशून्य होनेपर, निर्व्वाणपद सहज ही लाभ होता है। जिनके घरमें यति क्षणकाल विश्राम करते हैं, उन्हें दूसरे पुण्यका कोई प्रयोजन ही नहीं, वह उसीसे कृतकृत्य होते हैं; यति जिनके घर एक रात वास करते हैं, उन गृहस्थोंका आजीवन सञ्चित पापपुञ्ज दग्ध होता है। कोई कोई आश्रमी क्यों न हों, सबकी ही देहका वार्द्धक्य है, उत्कट रोगयातना मृत्यु, बारबार गर्भप्रवेश, गर्भमें दारुणक्लेश, अनन्त योनिमें वास, प्रियजनके साथ वियोग, अप्रियजनसे मिलन, धर्म्मानुष्ठानमें दुःख, फिर नरकवास, नरकमें अशेषयातना भोग, अपने अपने कर्म्मदोषसे विविध असद्गति, देहका अस्थायित्व और एकमात्र ब्रह्मकी नित्यता इन सबकी पर्य्या-लोचनाकर युक्तिके लिये यत्न करेंगे। जो सब यति भिक्षापात्र परित्यागकर, निज करतलको ही भिक्षाधार करते हैं, दिन दिन उनका शतगुण पुण्यसञ्चय होता है। साधु इस तरह क्रमिक चारो आश्रमकी सेवाकर रागद्वेषादि और सङ्ग परिहारकर

ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त होते हैं। बुद्धिहीन मनुष्यकी अवश्य आत्मा केवल संसारमायासे बद्ध होती है; किन्तु वही आत्मा बुद्धिमान द्वारा चालित हो सद्‌गति लाभ करती है। वेद, पुराण, स्मृति, उपनिषदिया, भाष्य, सूत्र, और द्रव्य जो कुछ वेदानुसारी वाङ्मयशास्त्र हैं—वह सभी विज्ञान और ब्रह्मचर्य्य, तपस्या, दम, श्रद्धा, उपवास और अनासक्ति, यह ब्रह्मज्ञानके प्रति कारण हैं। वह आत्मरूपी ब्रह्म सब आश्रमोंके ही जिज्ञास्य, श्रोतव्य, मन्तव्य और अति यत्नसे द्रष्टव्य हैं। आत्मज्ञानसे ही मुक्ति होती है, बिना योगके आत्मज्ञान नहीं होता, वह योग भी बहुत समयके अभ्याससे ही सिद्ध होता है। अरण्यवास या शास्त्राभ्यास, या दान, व्रत, यज्ञ, तपस्या, पद्मासन, नासाग्रदर्शन, आचार, मौनीभाव अथवा नियत मन्त्रजप करनेसे योग सिद्ध नहीं होता, किन्तु उस विषयमें अति आग्रह सहित बार बार विफल होकर भी एक मात्र अभ्यास करनेसे, वह सुसिद्ध होता है। जो आत्माको ही एकमात्र आश्रय जान, नियत उसमें ही क्रीड़ा करते हैं और उसीसे सन्तुष्ट रहते हैं; उनके लिये योगसिद्धि अति सुलभ है। इस संसारमें जिनके निकट आत्मेतर कुछ नहीं है, वही आत्मज्ञानी योगिन्द्र ब्रह्मपद लाभ करते हैं। पण्डितगण द्वारा आत्मासे मनका संयोग ही योगके नामसे निर्दिष्ट है। कोई कोई प्राणके साथ अपानवायुके संयोगको योग कहते हैं और दूसरे व्यक्ति विषयमें इन्द्रिययोगको ही योग कहते हैं। वह विषयासक्तचित्त मूढ़गण कभी ज्ञान या मुक्तिलाभ नहीं कर सकते। जबतक मनोवृत्तिका निरोध नहीं होता, तबतक योग सम्बन्धी अलीक प्रवादकी भी सम्भावना नहीं है। जो मनकी सब वृत्तिको रोधकर, जीवको परमात्मामें मिला देते हैं; वही योगी हैं और मुक्ति उनके हाथमें है। पहले सब इन्द्रियोंको अपनी अपनी वृत्तिशून्यकर, मनमें लीन करेंगे; उस मनको जीवात्मामें लीनकर, उस जीवका सब भाव दूर करते हुए उसे ब्रह्ममें विलीन करेंगे, इसीका नाम ध्यान और योग है। इसके सिवा जो कुछ है, सभी ग्रन्थका बाहुल्य परिचायक मात्र है। सभी ब्रह्मको हृदयङ्गम नहीं कर सकते, इसलिये ही वह अस्तित्ववादके विरोधी होते हैं; किन्तु वह समझ नहीं सकते। जैसे अविवाहिता कुमारी, पुरुषसङ्गम जनित सुखको नहीं जान सकती और जन्मान्धके निकट वर्त्तिका प्रज्वलिता होनेसे भी वह जान नहीं सकता, अयोगी पुरुषके लिये ब्रह्म भी उसी तरह हैं। परमात्मा नित्य और अतिसूक्ष्म हैं जानकर सहज ही लक्ष्य नहीं किया जाता; वह योगाभ्यासरत पुरुषको ही अति सुलभ हैं। वाताहत सलिलकी तरह जीवका चित्त नियत

अस्थिर होनेसे सदा उसका अविश्वास करेंगे। अस्थिर चित्तके स्थिर करनेका उपाय ;—प्राणवायुका निरोध है। वायुनिरोधका उपाय,—आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि यह षड़ङ्ग योगका नियत अभ्यास है। संसारमें जितनी जीवयोनि हैं, उतनी तरहके आसन भी हैं। उनमें सिद्धासन और पद्मासन यह दोनो शीघ्र सिद्धि प्रदान करते हैं। मेढ़्र पीड़ा न देकर वाम उरुसे दक्षिण उरु विन्यासकर उपवेशन करनेको सिद्धासन कहते हैं; वह योगमें सम्यक् सिद्धिदान करता और उसके अभ्याससे देह दृढ़ होती है। दक्षिणचरण वाम उरुसे या वामचरण दक्षिण उरुसे विन्यासकर उपवेशन करनेको पद्मासन कहते हैं। पद्मासनसे बैठकर पश्चाद्भागसे करद्वय द्वारा पदद्वयका अङ्गुष्ठ धारण करेंगे, इससे शरीर अति सुदृढ़ होता है। अथवा स्वस्तिकादि आसनोंमें जिस आसनसे बैठकर योगीको सुखानुभव हो, वह उसी आसनसे बैठकर योगाभ्यास करेंगे। जल और अग्निके पासमें, जीर्ण अरण्य या गोष्ठमें दंश या मशकाकीर्ण स्थानमें, ग्रामके प्रधान वृक्षमूलमें चत्वरमें या केश भस्म अङ्गार तुष या अस्थि प्रभृतिसे दूषित स्थानमें, या पूतिगन्धमय या बहुजनाकीर्ण स्थानमें योगाभ्यास न करेंगे। जहां किसी तरहके विघ्नकी सम्भावना नहीं है, परन्तु सब इन्द्रियोंको सुख बोध हो और मनको आनन्द हो, उसी धूपमाल्यादि गन्धसे आमोदित स्थानमें योगाभ्यास करेंगे, अत्यन्त आहारसे क्लिष्ट, क्षुधार्त्त मलमूत्रको वेगधारक, पथश्रान्त, अथवा चिन्तित न होकर ही योगाभ्यास किया जाता है। दोनो चरण उरुद्वयके ऊपर उत्तानभावसे रख, दक्षिण उरुके ऊपर वामकर रख, दक्षिण हाथ उन्नतकर और वक्षःस्थलमें मुख रख, दोनो आंख मूंदकर, दांतसे दांत स्पर्श न करके, जिह्वाको तालुमें स्थिर भावसे रख, संवृतवदन हो, सब इन्द्रियोंकी वृत्ति निरोधकर अनति निम्न या अनति उच्च आसनपर उपविष्ट हो, उत्तम, मध्यम और लघुभेदसे प्राणायाम करेंगे। वायु चञ्चल रहनेपर, सभी चञ्चल होता है और उसके स्थिर रहनेसे सभी इन्द्रिय स्थिर रहती हैं; इसलिये योगी स्थिरता लाभ करनेको वासनासे वायु-रोध करेंगे। जबतक देहमें प्राणवायु रहती है, तभीतक लोग जीवित रहते हैं और इस प्राणवायुके निर्गमनको मरण कहते हैं; अतएव यत्नसे इसकी रक्षा करेंगे। जबतक शरीरमें प्राणवायु आबद्ध रहे, तबतक मन वाह्यवृत्तिशून्य हो स्थिर रहता है और जबतक भ्रूद्वयके बीच दृष्टि निविष्टा रहे; तबतक जीव मृत्युभयसे निष्कृति पाता है। ब्रह्मा भी कालभयसे नियत प्राणायाम करते हैं। योगिगणने भी प्राणवायु रोधकर सिद्धि-

लोभ किया है। इस समय द्वादश मात्रा मन्त्रके जपको लघु और उसकी द्विगुण मात्रा मन्त्रजपको मध्यम और उसकी त्रिगुण मात्रा मन्त्रजपको उत्तम प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम अनुष्ठान करनेपर क्रमशः स्वेद, कम्प और विषाद उत्पन्न होता है। लघु प्राणायामसे स्वेद, मध्यमसे कम्प और उत्तमसे विषाद होता है; किन्तु नियत अभ्यास करते रहनेसे, यह सब भी अन्तर्हित होता है। इस तरह योगी क्रमशः प्राण निरोधकर सिद्धिलाभ करते हैं और इसके अभ्याससे योगी जहां जानेकी इच्छा करें, वहां वायुसे जा सकते हैं। प्राणवायुका हठात् रोध करनेसे वह रोमकूपसे निकलकर; देहको विदीर्ण करती और कुष्ठादि रोगका कारण होती है; अतएव बनैले हाथीकी तरह इसे क्रमशः रोध करेंगे। जैसे बनैले गज या सिंह शासकके शासनमें रहकर क्रमशः मृदु होते हैं, फिर उसकी किसी आज्ञाका लङ्घन नहीं करते; उसी तरह योगीकी हृदयस्थित प्राणवायु भी क्रमशः योगाभ्याससे निरुद्ध हो आज्ञावह होती है। यह वायु दक्षिण और वाममार्गसे नासारन्ध्रसे षट्त्रिंशदङ्गुल पर्यन्त बाहर प्रयाण करती है इसलिये इसका नाम "प्राण" है। जिस समय सब नाड़ीचक्र अनाकुलभावसे विशुद्धि लाभ करते हैं, तभी योगी प्राणायाम करनेमें समर्थ होते हैं। पहले आसनसिद्ध होंगी, फिर चन्द्रनाड़ी (इड़ा) द्वारा वायुपूरण करेंगी, फिर सूर्य्यनाड़ी (पिङ्गला) द्वारा रेचन करनेसे प्राणायाम होता है। योगी चन्द्रबीजसंयुक्त गलित सुधाराशिकी चिन्ता करते हुए प्राणायाम द्वारा तत्क्षणात् ही विमल सुख अनुभव करेंगी। सूर्य्यनाड़ीसे उस वायुको आकृष्ट करते हुए उससे जठरगुहा परिपूर्णकर क्रमशः कुम्भकानुष्ठानसे चन्द्रनाड़ी द्वारा रेचन करेंगी। ज्वलितवह्निराशिकी तरह हृदयमें सूर्य्यकी चिन्ता करते हुए दक्षिण प्राणायाम द्वारा सुख लाभ करते हैं। इस तरह तीन महीने प्राणायाम अभ्यस्त होनेपर, योगीका सब नाड़ीचक्र विशुद्ध होता है। उससे वह प्राणसिद्ध होते हैं। सिद्धप्राण होनेपर इच्छानुसार प्राण धारण कर सकते हैं और उनका जठरानल प्रदीप्त और नादध्वनिका अभिव्यक्ति होता है और कभी कोई रोग उनका आश्रय नहीं कर सकता। देहस्थ वायुको प्राण कहते हैं और तद्घटित श्वासमयी मात्रा प्राणायामरूप कहा जाता है। अधम प्राणायामसे शरीर घर्माक्त और मध्यम प्राणायामसे शरीर कम्पमान होता है। बद्धपद्मासन हो उत्तम प्राणायामका अभ्यास करनेसे, देह भूमिसे ऊर्द्ध्वमें उत्थित होती है; प्राणायाम करनेसे शारीरिक दोषसमूह और प्रत्याहार करनेसे सञ्चित पापराशि विलुप्त होती है; धारणाबलसे मन धैर्य्य

धारण करता है; ध्यानबलसे ईश्वर साक्षात्कार होता है; समाधिबलसे शुभाशुभ कर्म्मके क्षयसे मुक्तिलाभ होता है और आसनबलसे शरीर दृढ़ होता है। यह छः योगके अङ्ग हैं। द्वादश प्राणायाममें एक प्रत्याहार होता है, द्वादश प्रत्याहारसे एक धारणा होती है, द्वादश धारणासे एकबार ध्यान होता है; इसीसे ईश्वर साक्षात्कार लाभ होता है। द्वादश ध्यानसे एकबार समाधि होती है, समाधिके उपरान्त अनन्त स्वप्रकाश ज्योतिः परिलक्षित होती है; जो उसे देख पाते हैं, उन्हें किसी तरहकी अधिकारिता नहीं रहती और फिर संसारमें गमनागमन नहीं करना पड़ता। जिस समय प्राणवायु आकाशमें अवस्थित होती है तब घण्टा प्रभृति बाजेकी मधुरध्वनि सुनी जाती है और इसके उपरान्त सिद्धि मिलती है। योगीके प्राणायाम अनुष्ठानसे सब व्याधि दूर होती है और यह प्राणायाम अयोगी पुरुष द्वारा बलपूर्वक अभ्यस्त होनेसे हिक्का, श्वास, कास, और मस्तकसे, नेत्र और कानसे वेदना प्रभृति नानाविध पीड़ा उत्पादन करती है, अतएव परिमितरूपसे वायुत्याग, उसी तरह वायुका पूरण और उसी तरह वायुको आवद्ध करनेमें सक्षम होनेपर योगी शीघ्र सिद्धिलाभ कर सकते हैं। वाह्य विषयमें यथेच्छासे विचरणशील इन्द्रियगणको योग द्वारा उससे प्रत्याहरणको प्रत्याहार कहते हैं। जैसे कच्छप अपने सब अङ्ग प्रत्याहृत करता है, उसी तरह जो व्यक्ति प्रत्याहार विधानसे इन्द्रियसमूहको प्रत्याहरण करते हैं; वह निष्पाप होते हैं। चन्द्र तालुदेशमें रहकर अधोमुखसे अमृत वर्षण करते हैं और सूर्य्य नाभिदेशमें रहकर ऊर्द्धमुखसे वह अमृत प्राप्त करते हैं। ऐसा काम करेंगे, जिससे ऊर्द्धमें नाभि और अधोदेशमें तालु रहे ऐसा करनेसे सूर्य्यको ऊर्द्धमें और चन्द्र अधोदेशमें रखा जा सकता है। यह विपरीताख्य कार्य्य अभ्याससाहाय्यसे ही सिद्ध होता है। प्राणायाम विधानज्ञ योगी काकचञ्चुनिभ निजमुख द्वारा अत्यन्त शीतल प्राणधारक वायु पानकर देवत्वलाभ करते हैं। तालुके बीच जिह्वा रखकर ऊर्द्धमुखसे अमृत पान करनेपर, छः महीनेमें ही देवता होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। जो योगि ऊर्द्धजिह्व होकर स्थिर भावसे अमृत पान करते हैं, वह पक्षके भीतर ही मृत्युको जय करते हैं और जिह्वाके अगले भाग द्वारा मूलभागस्थ छिद्र स्पर्शकर सुधामयी देवीका ध्यान करनेसे छः महीनेमें कवि होते हैं। जिन योगीकी देह अमृतसे परिपूर्ण है, वह दो तीन वर्षमें ही ऊर्द्धरेता और अणिमादि सिद्धसम्पन्न होते हैं। योगी आसनसिद्ध, प्राणायामानुष्ठायी और प्रत्याहारसम्पन्न हो धारणाका अभ्यास करेंगे। मनको

स्थिरकर हृदयमें अलग अलग पञ्चभूतकी धारणाकी ही धारणा कहते हैं। हृदयमें हरितालवर्ण लकारंयुक्त ब्रह्ममयी चतुष्कोण भूमिकी चिन्ता करेंगे, इसे क्षिति-धारणा कहते हैं। अर्द्धचन्द्रसन्निभ, विष्णुदैवत, वकारसंयुक्त और कुन्द पुष्पकी तरह शुभ्र अम्बु तत्त्वका कण्ठदेशमें ध्यान करनेसे अम्बु जय किया जाता है। तालुस्थित इन्द्रगोप कीटविशेषकी तरह दृश्यमान रकार-संयुक्त रुद्रदैवत त्रिकोण तेजकी चिन्ता करनेसे वह्निविजित होते हैं। भ्रूदयके बीच गोलाकृति अञ्जनाभ यकार-संयुक्त ईशदैवत तत्त्वका ध्यान करनेसे, वायुको जय करते हैं। ब्रह्मरन्ध्रमें सदाशिवसंयुक्त हकार-बीजी शान्त आकाशतत्त्वकी चिन्ता करते हुए वहां पञ्चघटिका परिमित काल प्राण-वायुको मनः संयोगसे निरोध करनेपर व्योमधारणा की जाती है; यह मोक्ष-द्वारका कपाटस्वरूप विघ्नराशिके उत्पाटन करनेमें समर्थ होता है। पञ्चभूतकी धारणा, यथाक्रमसे स्तम्भनी, प्लावनी, दहनी, भ्रामणी और शमनी इन पांच नामोंसे कथिता हैं। यथार्थ विषयमें मनकी स्थिरताका नाम चिन्ता है, "ध्यै" धातुका अर्थ भी यही है, अतएव चिन्ता ही उक्त धातुसिद्ध ध्यान शब्दका अभिधेय है। वही चिन्ता सगुण निर्गुण भेदसे द्विविध है। वर्णभेदसे चिन्ता सगुण है, केवल चिन्ता निर्गुण और समन्त्रक चिन्ता सगुण और मन्त्ररहित चिन्ता निर्गुण कहकर विख्यात है। सुखावह आसनपर उपविष्ट हो मनको अन्तरमें और नेत्रको बाहर रखकर, शरीरके समतासम्पादनको अति सिद्धिप्रद ध्यानमुद्रा कहते हैं। स्थिरासन योगीके एक बार ध्यान करनेसे जो पुण्य अर्जित होता है, राजसूय या अश्वमेध यज्ञ करनेसे भी वह पुण्य नहीं लाभ होता। जबतक कर्णादिमें शब्दादितन्मात्रा रहे, तबतक ध्यानावस्था है। इसके उपरान्त समाधिदशा कहते हैं। पांच दण्डतक चित्तकी स्थिरताको धारणा षष्टिदण्डकाल चित्तकी स्थिरताको ध्यान और द्वादश दिन चित्तकी स्थिरताको समाधि कहते हैं। जैसे जलमें सैन्धव योग करनेसे एकाकार होता है, उसी तरह आत्मा और मनका एकी भाव समाधिके नामसे कथित है। जिस समय प्राण क्षीण होता है, चित्त विलीन होता है, उस समरसताको ही पण्डितगण समाधि कहते हैं। इस देहमें जीवात्मा परमात्माकी समता पानेसे, जबतक वासना तिरोहित हो, उसे समाधि दशा कहते हैं। समाधिस्थ योगीको आत्मीय या पराये, शीत या ग्रीष्म, कुछ भी अनुभव नहीं होता और काल उनकी सीमा नहीं करने पाता। कृतकर्म उन्हें आश्रय नहीं कर सकते, शस्त्र या अस्त्र उनकी देह भेद करनेमें समर्थ नहीं है। जो योगी मिताहारी हो विहार, निद्रा और जाग-

रण परिमितकर सब कार्य्यके साधन चेष्टाको परिमितभावसे करते हैं, वह सहज ही तत्त्वज्ञान लाभ करते हैं। जो हेतु और दृष्टान्तके अलच्य, वाक्य और मनके अगोचर और विज्ञान या आनन्दस्वरूप ब्रह्म हैं; उन्हींको ब्रह्मज्ञानी तत्त्व कहा करते हैं। योगीके षड़ङ्ग योगाभ्याससे निर्भीक निरामय निरालम्ब परब्रह्ममें विलय होते हैं; जैसे घृत घृतमें निक्षेप होनेसे घृत ही रहता और क्षीरमें क्षीर मिलानेसे सभी क्षीरमय, उसी तरह योगी परमब्रह्ममें विलय होनेपर तन्मयता ही लाभ करते हैं। सदा श्रमसम्भूत घर्म्मजलसे शरीर मर्द्दन करेंगे और क्षीरभोजी हो कटु या उष्णद्रव्य और लवण भक्षण करेंगे। जितेन्द्रिय रहकर ब्रह्मचर्य्य व अनुष्ठानमें क्रोध लोभ और मात्सर्य्य परिहारकर इसी तरह एक वर्षतक अभ्यास करनेपर योगी नामसे अभिहित होते हैं। जो महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डियान, जालन्धर और मूलबन्ध परिज्ञात होते हैं; वह योगसे सिद्धि लाभ करते हैं। नाड़ीसमूहका शोधन, चन्द्रनाड़ी और सूर्य्यनाड़ीका मिलन और उत्तमरूपसे रसशोषणको ही महामुद्रा कहते हैं। वामपद द्वारा जननेन्द्रिय पीड़न करते हुए वक्षःस्थलमें चिबुक रख दोनो हाथ द्वारा लम्बित दक्षिणचरण धर प्राणवायुसे उदर पूर्णकर, फिर उसे रेचन करनेपर महामुद्रा किया जाता है, इससे महापातकराशि भी विनष्ट होती है। इस तरह प्राणायाम इड़ासे अभ्यस्त करनेपर, पिङ्गलासे अभ्यास करेंगे। जिस समय पुरकादिकी संख्या समान होगी, तब मुद्रा परित्याग करेंगे। इसके अभ्याससे योगीके पथ्यापथ्यके अविचारसे कोई क्षति नहीं। अपकारी सब रस उनकी देहमें निज शक्ति दिखा नहीं सकते, कठोर विषपान करनेपर भी अमृतकी तरह जीर्ण होता है। महामुद्राके अभ्याससे क्षय, कुष्ठ, अर्श, गुल्म और अजीर्ण प्रभृति कठिन रोग विनष्ट होते हैं। कपालकुहरसे जिह्वाको विपरीतगामिनी रख भ्रूद्वयके बीच निश्चलदृष्टि स्थापनको खेचरी मुद्रा कहते हैं; जो उक्त मुद्रासे विशेष अवगत हैं, वह कर्म्मविपाक लिप्त नहीं होते और कभी रोग उन्हें अपने अधीन नहीं कर सकता। इसके अभ्यासके समय जिह्वा और मन खे अर्थात शून्यमें विचरण करता है, इसलिये ही उस मुद्राका नाम खेचरी है; सिद्धगणमें इसका यथेष्ट आदर है! जबतक देहमें विन्दु स्थिरभावसे रहता है, तबतक मृत्युका भय नहीं रहता। इसलिये यह विन्दुनिर्गमनिवारिणी खेचरीमुद्रा, अति प्रशंसनीया है। दिनरात महाप्राण उड्डीन करते हैं, इसलिये वक्ष्यमाण बन्धका नाम उड्डियान है; इससे दोनो हाथके अग्रभागसे जानुद्वय. जठरमें और नाभिके

ऊर्द्धदेशमें क्रमिक अवस्थापित करेंगी। इसके अभ्याससे मृत्युभय दूर होता है। जिससे अधोगामी जलादिकी कण्ठदेशमें शिरासमूह द्वारा रक्षा की जाती है, वह सब दुःखविनाशन जालन्धरबन्ध नामसे अभिहित है। कण्ठका सङ्कोचसूचक यह जालन्धरबन्ध अभ्यस्त होनेपर ललाटस्रुत अमृत और जठराग्निमें पतित नहीं होते और शरीरकी वायु भी चञ्चल नहीं होती। पार्ष्णि भागसे योनि सम्पीड़ितकर वायु सङ्कोचपूर्व्वक अपान वायुको ऊर्द्धमें आकर्षण करनेसे मूलबन्ध होता है; इससे प्राणके साथ अपान अभिन्न होनेपर, मूत्रपुरीषका क्षय होता है; इससे वृद्ध भी अल्पकालमें युवाकी तरह शक्ति धारण करते हैं। जीव प्राण और अपान वायुके वशमें रहकर नियत चञ्चल हो वाम और दक्षिण मार्गसे ऊर्द्ध और अधोभागमें गमन करता है, क्षणकाल भी स्थिर नहीं रह सकता। जैसे रज्जुबद्ध पक्षी उड़नेपर भी फिर उसी जगह आकृष्ट होता है, उसी तरह सत्त्वादि गुणसे आवद्धजीव प्राणायामकालमें प्राण और अपान द्वारा आकृष्ट हो देहमें ही अवस्थित रहता है। अपानवायु द्वारा प्राण आकृष्ट होता और प्राणवायु अपानको आकर्षण करती है। यह वायुद्वय क्रमिक ऊर्द्धमें और अधोभागमें अवस्थित हैं; योगी ही इनके मिलानेमें समर्थ होते हैं। जीव हकारबीज द्वारा निर्गत हो फिर सकारबीजमें प्रवेश करता है, इसलिये सर्व्वदा ही "हंस" इस मन्त्रका जप करते रहें; जीव एक अहोरात्रमें षट्शताधिक एकविंशति सहस्र बार इस मन्त्रका जप करते हैं, इसे "अजपा" गायत्री कहकर निर्द्देश करते हैं। इसके सङ्कल्पमात्रसे ही मनुष्यमें पाप आश्रय नहीं करने पाता। योगियोंके लिये जो सब उपस्थित होनेसे योगकी हानि होती है, वह सब विघ्न कहता हूं। दूरगत बात सुनने या दूरस्थित पदार्थ देखने और निमिषार्द्धमें शतयोजन पथ चलनेकी क्षमता होती और अदृष्ट अश्रुत शास्त्रका मर्म्मार्थ सब सूक्ष्मरूपसे परिज्ञात होता है, अतिशय मेधाशक्ति और गुरुतर भार लघु बोध होता है। स्वयं कभी कृश, कभी स्थूल, क्षणमें महान्, क्षणमें अल्प होते और पराई देहमें प्रवेश करनेमें समर्थ होते हैं; पशुपक्षीकी भाषा समझ सकते हैं, देह दिव्यगन्धशाली होती है, दिव्यदेहधारी हो दिव्य बात कहते हुए दिव्यकन्याओंके प्रार्थनीय होते हैं; इस तरह विघ्नसमूह योगसिद्धिकी सूचना देते हैं। योगीका चित्त यदि इन सब विघ्नसे अभिभूत न हो, तो परकालमें उन्हें ब्रह्मादि देवगणका दुर्लभ परम पद लाभ होता है। जिसके पानेसे संसारमें फिर नहीं आना पड़ता या किसी लिये शोक नहीं करना पड़ता, हे कुम्भयोने! वह षडङ्ग योगसे लभ्य

होता है। एक जन्ममें कैसे ऐसी योग-सिद्धि होगी और योगसिद्धिके अतिरिक्त कैसे इस संसारमें निर्व्वाणपद मिलेगा? हे कुम्भयोने! इस तरहका योग या काशीमें देहत्याग, यह दो ही मुक्तिके उपाय हैं। इस कलिकालमें जीवका चित्त अतिशय चञ्चल और पापस्पर्शसे मलिन और आयु भी अति अल्पकाल होनेसे ऐसा योगाभ्यास दुर्घट है; इसीलिये दयामय विश्वेश्वर काशीक्षेत्रमें मुक्तिदाता होकर अवस्थान करते हैं। काशीमें जैसे अति सुखके साथ मुक्तिलाभ होता है, दूसरी जगह योगादि नाना उपायसे भी वैसे अल्पायाससे मुक्ति जीव नहीं पाता। काशीमें अवस्थान करना ही सम्पूर्ण योग कहकर निर्द्दिष्ट है; इस योगसे जितना शीघ्र मुक्ति होती है, वैसी और किसी उपायसे नहीं। काशीमें विश्वेश्वर, विशलाक्षी गङ्गा, कालभैरव, ढुण्ढिराज और दण्डपाणि यह छः योगके अङ्ग हैं। यहां इस षड़ङ्गयोगकी नियत सेवा करनेसे ही दीर्घ योगनिद्राके सहायसे मुक्तिपद लाभ होता है। यहां ओङ्कारनाथ कृत्तिवासः, केदारेश्वर, त्रिपिष्टपेश्वर, वीरेश्वर और विश्वेश्वर, यह छः भी योगके दूसरे अङ्ग हैं। असि और वरणासङ्गम, ज्ञानवापी, मणिकर्णिका, ब्रह्मकुण्ड और धर्म-कूप, यह छः भी उसी योगके दूसरे अङ्ग हैं। हे नरवर! काशीमें इस षड़ङ्गकी सेवा करनेसे जीवको फिर जठरयन्त्रणा भोगना नहीं पड़ती। काशीमें गङ्गामें अवगाहन ही महापापनाशिनी महामुद्रा हैं, इनके अभ्याससे मुक्तिलाभ होती है, काशीके पथमें विचरनेको खेचरीमुद्रा कहते हैं; इसके अभ्यस्ता निश्चय खेचर अर्थात् देवता होते हैं। दूर देशसे उड़कर काशीमें आनेका ही नाम उड्डियान-बन्ध है; यह अभ्यस्त होनेपर मुक्तिदान देता और विश्वेश्वरका स्नानसम्भूत देवदुर्लभ जल मस्तकमें धारण करनेसे जालन्धरबन्ध अनुष्ठित होता है। शत-विघ्नसे व्याकुल होकर भी सुधीव्यक्ति काशीको परित्याग नहीं करते, इसीका नाम मूलबन्ध है; इससे सब दुःखका मूल विनष्ट होता है। हे मुने! महादेव कथित मुक्तिका उपायभूत त्रिविधयोग तुमसे कहा। जबतक जीवकी इन्द्रिय विकल न हों, जबतक व्याधि आश्रय न करे और जबतक मृत्युमें विलम्ब हो, तबतक योगाभ्यास करेंगे। इन दोनों योगोंमें काशीयोग ही उत्तम है, इसके अभ्यास करनेसे परमयोग सहज ही प्राप्त होता है। मृत्युके चिह्नभूत आधिव्याधिसहायिनी जरा उपस्थित होनेपर मृत्युको निकट जान काशीश्वरका आश्रय करेंगे। काशी-नाथके शरणागत होनेसे मानवका काल-भय विदूरित होता है; कारण काल कुपित हो जीवन हरण करता है; वह भी आ-

योंके प्रति मङ्गलका विषय है। धार्म्मिक व्यक्ति अतिथिसत्कारके समय जैसे अतिथिकी प्रतीक्षा करते हैं, उसी तरह भाग्यवान् व्यक्ति काशीमें मृत्युके आगमन प्रतीक्षित हो रहे हैं। कलि, काल और कृतकर्म्म, इन तीनको शुभका कण्टक कहकर निर्द्देश करते हैं; काशीवासीपर इनकी कोई प्रभुता नहीं है। दूसरी जगह काल अतर्कित-भावसे आकर स्वसामर्थ्य प्रकाश करता है; जिनको कालभय दूर करनेकी वासना है, वह सुकृति पुरुष, काशीका आश्रय करें।

एकचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंश अध्याय।

कालवञ्चनोपाय।

अगस्त्यने कहा, किसतरह मृत्यु को निकटवर्त्ती जान सकते हैं, उसका क्या लक्षण है, वह मुझसे कहिये। स्कन्दने कहा, हे मुनिवर! जिन सब चिह्नको देखकर मृत्यु सन्निहित समझी जाती है, वह कहता हूं सुनो। जिसके केवल दक्षिण नासापुटसे दिनरात निश्वास प्रवाहित हो, वह दीर्घायु होनेपर भी तीन वर्षमें मर जावेंगे। दो या तीन दिन रात जिसका निश्वास दक्षिण नाड़ीसे चले, तबसे एक वर्षतक वह व्यक्ति जीवित रहता है। जिसके दोनो नासापुटसे निरन्तर दश दिन निश्वास प्रवाहित हो और बीच बीचमें मिल जाय, उसके जीवनका समय तीन दिन है। श्वासवायु नासापुटसे न निकलकर जिसके मुखसे प्रवाहित हो, वह दो दिनके भीतर ही मर जायगा। जिस समय अकस्मात मृत्यु होती है, मृत्युभीत व्यक्ति उस समयकी चिन्ता पहलेहीसे करेंगे। जब सूर्य्य सप्तम राशि और चन्द्रमा जन्मनक्षत्रका आश्रय करते हैं, तब दक्षिण नासासे जो निश्वास बहता है; इस सूर्य्याधिष्ठित कालके ऊपर विशेष लक्ष्य रखना कर्त्तव्य है। उस दिनसे यत्कर्त्तृक अकस्मात कृष्ण और पिङ्गलवर्ण पुरुष दिखाई देते हैं और इसके बाद ही उस पुरुषका रूपान्तर लक्षित होते हैं, वह मात्र दो वर्ष बचते हैं। जिनके दृष्टिपथसे आकाशमें विचरणकारी मरकताभ गजराजि निपतित हो, वह छः महीनेमें ही मर जाते हैं और जो मुंहमें जल लेकर सूर्य्याभिमुख न होकर आकाशकी ओर फुत्कार करें और उसमें इन्द्रधनु न दिखाई दे, वह भी उतने ही दिन जीवित रहते हैं। जो व्यक्ति अरुन्धती, ध्रुव, विष्णुपद और मातृमण्डल न देख पावें, उनकी मृत्यु निकट जानेंगे। जिह्वाको अरुन्धती, नासिकाके अगलेभागको ध्रुव, भ्रूमध्यको विष्णुपद और नेत्रद्वयके मध्यभागको मातृमण्डल कहते हैं। जिन्हें नीलादिवर्णका और कटु अम्ल प्रभृति रस सबके याथार्थ्य दूसरी तरह जान पड़े,

तो छः महीनेमें ही मृत्यु आकर उन्हें ग्रास करती है। जिनकी छः महीनेमात्र आयुका समय अवशिष्ट है, उनका कण्ठ, ओष्ठ जिह्वा, दन्त और तालु सदा शुष्क होता है और जिनका शुक्र, हाथकी उंगली और कानका कोण नीलाभ हो, छः महीनेमें ही वह यमालयमें उपगत होते हैं। मैथुनकालमें या उसके बाद जिन्हें छांकी होती है, वह पांच महीनेतक जीवित रहते हैं। नानावर्णके कृकलास जिनके मस्तकपर अतर्कित भावसे आकर चले जायं, वह छः महीनेमें मर जाते हैं। जिनके स्नानके बाद ही वक्षःस्थल, पदयुगल और दोनो हाथ सूख जाते हैं, वह तीन महीनेसे अधिक नहीं बचते। धूलि या कीचड़में जिनका पदचिह्न खण्डितभावसे लक्षित हो, उनका आयुःकाल पांच महीनेतक है। देह चञ्चल न होनेपर भी जिनकी छाया चञ्चल होती है, चार महीनेके भीतर वह यमदूतके बन्धनमें पतित होते हैं। जिन व्यक्तियोंको स्वच्छ दर्पणादिमें निज प्रतिबिम्बमें मस्तक न दिखाई दे, वह महीनेमें ही मृत्युमुखमें निपतित होते हैं। बुद्धिभ्रंश, वाक्यका स्खलन, आकाशमें दृष्टिक्षेप करनेसे ही इन्द्रधनु दर्शन, रातमें दो चन्द्र, दिनमें दो सूर्य्य या नक्षत्र और रातमें नक्षत्रहीन आकाश एक समयमें चतुर्दिक् इन्द्रधनु और वृक्षके ऊपर या पर्व्वत शिखरपर गन्धर्व्वनगर और दिनमें पिशाचोंका नाच, वह सब देखनेसे शीघ्र मृत्यु होती है। इनमेंसे यदि एक चिह्न भी लक्षित हो, तो महीनेके भीतर ही जमालयको जाते हैं। जिनको उंगली द्वारा कर्ण रुद्ध करनेपर किसी तरहका शब्द न सुनाई दे और जो स्थूल होकर भी हठात् कृश या कृश रहकर सहसा स्थूल हों, वह एक महीनेके भीतर मृत्युवशसे उपनीत होते हैं। जो व्यक्ति स्वप्नमें पिशाच, असुर, काक, भूत, प्रेत, कुक्कुर, गृध्र, शृगाल, शूकर, खर, गर्द्दभ, उष्ट्र, वानर, श्येन पक्षी, अश्वतर या वकके पृष्ठपर आरूढ़ हो उनके भक्ष्य हों, वह एक वर्षके बाद ही जमालय उपगत होते हैं। जो निज पाटलवर्ण देह, गन्ध पुष्प या वस्त्र द्वारा भूषित होती दिखाई दें, उनका आयुःकाल अष्टमास मात्र अवशिष्ट है। स्वप्नमें जो धूलिराशिमें वल्मीकराशिमें या यूपदण्डमें आरूढ़ हुए हों; उनका जीवन छः महीनेसे अधिक नहीं रहता। जो अपनेको स्वप्नमें गर्द्दभपर चढ़ना, तैलमर्द्दन करना, मुण्डित हो यमालय जाते देखें और अपने मृत पूर्व्वपुरुषोंको और मस्तक या देहमें तृण या काष्ठराशि अवलोकन करें, वह छः महीनेसे अधिक नहीं बचते। जिनके सामने कृष्णवर्ण पुरुष कृष्ण-वसन परिधानकर लोहदण्ड धारणकर उपस्थित हो, उनकी मृत्यु तीन महीनेमें होती है। जिन्हें स्वप्नमें कृष्णवर्णकुमारी आलिङ्गन

हरें, वह एक महीनेके भीतर यमालयमें जाते हैं। जो स्वप्नमें वानरपर आरूढ़ हो पूर्व्व ओर जावें, वह पांच दिनके भीतर मृत्युमुखमें निपतित होते हैं। कृपण व्यक्ति भी अकस्मात् दाता होनेसे अथवा दाताके हठात् कृपण होनेसे, या और किसी तरह सहसा स्वभाव विकृत होनेसे, शीघ्र मरते हैं। यह सब और अन्यान्य बहुतर काल-चिह्न परिज्ञात हो योगाभ्यास या काशीका आश्रय लेंगे। हे मुने! जठर यातनानिवारक मृत्युञ्जय काशीनाथके सिवा कालको छलनेके लिये और कोई उपाय है या नहीं यह मैं नहीं जानता। मानव जबतक विश्वेश्वरके शरणागत न हों, तबतक उनके लिये पापराशि और दण्डधर गर्ज्जन करते हैं। काशीमें वास, वहां गङ्गाजल पान और विश्वेश्वर लिङ्ग स्पर्श करनेसे, जीव किसकी पूजा प्राप्त नहीं करता? जिस काशीमें मरणकालमें स्वयं शिव जीवके कर्णमें मन्त्रोपदेश करते हैं, वहां उस जीवके ऊपर कालकी कोई प्रभुता ही नहीं रहती। बाल्य और कौमारदशा जैसे अल्प-दिनमें ही अतिवाहित होती है, उसी तरह यौवन और वार्द्धक्य भी अल्पदिनमें ही चला जाता है; इसलिये जबतक जरा आकर इन्द्रियगणको विकल न करे, उसके भीतर ही पण्डित व्यक्ति तुच्छ विषयसुख परित्यागकर काशीवासी होंगे। हे अगस्त्य! अन्यान्य मृत्युचिह्नकी बात दूर रहो, जरा ही मृत्युका प्रथम चिह्न है; वही जरा किसीका भी भयहेतु नहीं होता, यह बड़े आश्चर्यका विषय है। जरा जिसपर आक्रमण करता है, सबके निकट दरिद्रकी तरह उसका पराभव है और पुत्र आदि अवहेला करते हैं, पत्नी प्रेमपर्य्यन्त परित्याग करती है, बन्धु-गण उनका आदर नहीं करते। जराग्रस्त व्यक्तिको देखकर प्रणयिणी प्रमदा भी परस्त्रीकी तरह शङ्कित हो स्थानान्तरमें चली जाती हैं। जरा जैसी पीड़ा या दुःख और नहीं है। मानवगण जरासे अपमानित होते हैं और जरा द्वारा ही वह मृत्यु ग्रासमें चालित होते हैं। काशीवाससे अल्पकालमें जैसे कालको दूर किया जाता है, तपस्या या योगाभ्याससे उतने अल्प समयमें कालजय नहीं होता! अशेष यज्ञ, दान, व्रत और तपश्चर्य्याजनित पुण्य-सञ्चयके सिवा कोई काशीलाभ नहीं कर सकता। काशीप्राप्ति ही योग, काशीप्राप्ति ही तप, काशीप्राप्ति ही दान और काशी-प्राप्ति ही शिवैकता है। काशीका यदि आश्रयकर पावें, तो उनके सन्निधानमें कलि ही क्या है, काल ही क्या है, जरा ही क्या है, दुष्कृत ही क्या है?—सभी तुच्छ है; कोई अग्रसर नहीं हो सकते? यदि तीर्थ काशी आश्रित नहीं, तो कलि उन्हीं-का क्लेशदायक है; कालग्रासमें वही व्यक्ति निपतित होते हैं, पापराशि उनको ही कष्ट

होती है। जो काशी आश्रयकर विश्वेश्वरकी आराधना करते हैं, उन्हें अन्तकालमें ब्रह्मज्ञान लाभ और उससे कर्म्मसूत्र छेदन होता है। काशीमें मरनेसे जो अक्षय सुखलाभ होता है, धनी मानव इस संसारमें कभी वैसे सुखी नहीं हो सकते। काशीमें जो व्यक्ति यथाविधि अवस्थान करते हैं, वह स्वर्गपदपर समासीन व्यक्तिकी अपेक्षा अधिकतर श्रेष्ठ हैं; कारण काशीवासीका दुःख अवसान होता है और स्वर्गवासीको सुखका ही अवसान लाभ होता है। इन, राजा दिवोदास प्रतिपालिता, काशीके सिवा भगवान विश्वेश्वरकी सुन्दर मन्दर गुहामें बैठे रहने पर भी वैसा प्रीतिलाभ नहीं होता।

द्विचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंश अध्याय।

दिवोदास नृपतिका प्रतापवर्णन।

अगस्त्यने कहा, हे कार्त्तिकेय! भगवान् काशीनाथ कर्त्तृक किसतरह राजा दिवोदास काशीसे दूरित हुए थे और किस उपायसे फिर मन्दराचलसे काशीमें आये थे, वह वर्णन करिये। स्कन्दने कहा, आदिदेव महादेव, ब्रह्मवाक्य लङ्घन न कर और मन्दर पर्व्वतकी तपस्यासे सन्तोष लाभकर, काशीधामको शून्य करते हुए मन्दर पर्व्वतपर गये। सब देवगण भी उनके अनुगामी हुए। तब नारायण भी सब वैष्णवचिह्न परित्यागकर पार्व्वतीनाथके अधिष्ठित मन्दराचलमें उपस्थित हुए। गणपति और सूर्य्यदेव भी अपना अपना स्थान परित्यागकर वहां गये और अन्यान्य देवगण भी मर्त्त्यमें अपना अपना धाम शून्यकर उस मन्दरपर्व्वतपर जाने लगे। इसतरह देवताओंके पृथिवी परित्याग करनेपर, प्रतापशाली सार्व्वभौम दिवोदास, निर्व्विघ्नसे राज्य करने लगे। वहां काशीमें नगरी निर्म्माणकर प्रजागणको पुत्रनिर्व्विशेषसे पालन करते हुए, दिन दिन वर्द्धित होने लगे। वह दुष्टोंके हृदय और नेत्रमें सूर्य्य जैसे तेजस्वी और तीक्षणदण्ड थे और सुहृद या आत्मीयगणके नयनमें और हृदयमें सौम्यमूर्त्ति हो प्रीतिसम्पादन करते थे। राजा दिवोदास इन्द्रधनुकी तरह धनुका टङ्कारकर रणस्थलमें भागती हुई शत्रु सेनारूप मेघवृन्द द्वारा वारंवार लक्षित होते और सज्जनके सत्कारक और दुष्टके दण्डकारी धर्म्माधर्म्मविवेचक उन राजाको लोग धर्म्मराजकी तरह समझते थे। उन्होंने अर्ज्जुनकी तरह कई बार अरिकुलरूप अरण्यसमूह दग्ध किया था और वरुणकी तरह दूरस्थ होकर भी शत्रुगणका बन्धन किया था। रिपुरूप राक्षसके छेदक और पुण्यकर्म्माओंके श्रेष्ठ वह राजा जगत्प्राणनतत्पर हो जगत्प्राण (वायु) की तरह थे और सब साधुगण उनसे अमूल्य-

रत्नादि पाकर उन्हें कुवेर समझते थे संग्रामस्थलमें मनुगण उनकी उग्रमूर्त्ति सह नहीं सकते थे। वह तपोवलसे समस्त देवगणके रूपधारणमें समर्थ थे, इसलिये देवता उनका स्तव और भजन करते थे। धनसामर्थ्यसे वसुगणसे भी अधिकतर उन राजाकी महिमा देवगणके निकट भी दुर्व्विज्ञेय थी। अश्विनीकुमारसे भी समधिक रूपवान् उन राजाके ग्रहगण विरुद्ध हो अनिष्टकारी होनेपर, वह युद्धकर उन्हें दूर करते थे। विद्याधरगणके भितर भी अधिक विद्याधर हो मरुद्गणकी उपेक्षाकर तृषित लोगोंकी निज-गुणसे परितुष्ट करते थे। गीतविद्यामें गन्धर्व्वगणके भी गर्व्वखर्व्वकारी इन राजाका स्वर्गोपम दुर्गको यक्ष और राक्षसगण नियत रक्षा करते थे। नागगण उनका सामर्थ्य सन्दर्शनकर कभी उनका अनिष्ट करनेके साहसी नहीं होते थे। दैत्य लोग भी उनकी सेवा करते और गुह्यकगण उन्हें सदा वेष्टन करते रहते। "आपने राज्यसे देवताओंको दूर किया है; इस कारण हमलोग अपने अपने विभवानुसार आपकी सेवा करेंगे," ऐसा कहकर असुरगण उनका स्तव करते थे। वायु, अश्वगति शिक्षा-शास्त्रमें शिक्षकपदपर अवस्थित हो, इन राजाके अश्वगणको शीघ्रगतिकी शिक्षा देती थी। इन राजाका पर्व्वतदेहवत् विपुलदेहसम्पन्न पार्व्वत-गजराजिको अजस्र दान (मद जल) सम्पन्न देख दूसरे भी दानसम्पन्न (दाता) हुए थे। सभाप्राङ्गणमें उनके पण्डित-लोग शास्त्रमें और रणाङ्गणमें उनके योद्धालोग शस्त्रसे, कभी किसीसे पराजित नहीं हुए। उनके राज्यमें दैवग्णको किसीने प्रत्यक्ष नहीं देखा और उनके प्रजापुञ्जको अप्रत्यक्ष नहीं देखा। स्वर्गमें देवताओंके बीच एक कलानिधि हैं; किन्तु इनके समयमें भूर्लोक सभी कलाका (नृत्यगीतादिका) निधि (आकर) था। स्वर्गलोकमें एक कामदेव है, वह भी अनङ्ग; किन्तु इनके राज्यमें समस्त लोग अङ्ग-उपाङ्गके सहित विराजते थे। उनके राज्यमें कोई गोत्रभित् ,(कुलनाशक) है ऐसा नहीं सुनाई देता था; किन्तु स्वर्गमें स्वयं देवराज ही गोत्रभित् नामसे अभिहित हैं। स्वर्गमें चन्द्रमा प्रति कृष्णपक्षमें क्षयको प्राप्त होते हैं, किन्तु उनकी प्रजामें कोई क्षयी नहीं था। स्वर्लोक, नवग्रहकी वासभूमि है: किन्तु उनकी समयमें मर्त्त्यमें कोई ग्रह नहीं था। स्वर्गमें मात्र एक हिरण्यगर्भ रहते हैं, किन्तु उनके समस्त पुरजनका भवन हिरण्यगर्भ (सुवर्णपूर्ण) था। स्वर्गमें एक अंशुमान हैं, वह भी सप्ताश्व, किन्तु उनके नगरवासी सभी सदंशुक वहाश्व थे। इन राजाकी नगरी भी स्वर्गकी तरह अप्सरा समूहसे सुशोभिता थी। वैकुण्ठ मात्र एक

पद्माकी आवासभूमि है, किन्तु उनके राज्यमें बहुत पद्माकर थे। उन राजाके सब साम्राज्यमें ही ईति (अनावृष्टि प्रभृति) का भय लोग नहीं जानते थे, सब ग्रामकी राजपुरुषलोग रक्षा करते थे। स्वर्गमें एक अलकानाथ ही धनद नामसे विख्यात हैं, किन्तु उनके समय घर घरमें धनदगण शोभा पाते थे। राजादिवोदासने इसतरह राज्य करते हुए आठ अयुत वर्ष एक दिनकी तरह अनायास अतिवाहित किये। इसी समयमें देवतालोग धर्म्मानुसार प्रजापालक इन राजाका अपकार करणाभिप्रायसे वृहस्पतिके साथ मन्त्रणा करने लगे। हे मुनिवर! भवादृश धार्म्मिक व्यक्तिको ही देवगण बहुतर विपदमें निक्षेप करते हैं। इन भूमिपति दिवोदासने कितने शत दुष्कर यज्ञके अनुष्ठानसे यज्ञभुक् देवगणका सन्तोष किया था, तथाच वहलोग इनके विपक्ष होते हैं। अथवा देवगणका ऐसा स्वभाव है, कि वह पराधिका उत्कर्ष सह्य नहीं कर सकते। नहीं तो बलि, बाण और दधीचि प्रभृति अनपराधी होकर भी क्यों उनके निग्रहभाजन हुए? धर्म्मानुष्टानमें बहुतर विघ्न पाकर भी धार्म्मिकगण कभी धर्म्मच्युत नहीं होते। अधार्म्मिक व्यक्ति पहले धनधान्यसम्पन्न हो वृद्धि पाते और अधर्म्मप्रभावसे अन्तकालमें समूलसे विनष्ट हो अधोगमन करते हैं। राजादिवोदास अप्रत्यनिर्व्विशेषसे प्रजापालक थे इसलिये अधर्म्मका कणामात्र भी उनका आश्रय नहीं हुआ। देवतालोगोंने, षाड़्गुण्यवेत्ता शक्तित्रयशाली धर्म्मादिचतुर्व्वर्गके सदुपायवेत्ता उन राजाका कोई छिद्र न पाया। अपचिकीर्ष देवगणके हृदयमें उन राजाका अपकार करनेमें किसी तरहकी शङ्का न हुई। इन राजाके अधीनस्थ यावत् पुरुषकी धर्म्माचरणमें वासना और एक सहधर्म्मिणी थी। वहांकी स्त्रीमात्र सती थीं; उनके राज्यमें सब ब्राह्मण पण्डित, क्षत्रिय बलशाली, वैश्यगण अर्थोपार्ज्जनके उपायाभिज्ञ और शूद्रगण अन्यवृत्ति परिहारपूर्व्वक द्विजशुश्रुषामें आसक्त थे। उनके समयमें ब्रह्मचारिगण अस्खलित ब्रह्मचर्य्य हो, गुरुके अधीन रहकर वेदपाठ करते थे। गृहस्थगण आतिथ्यधर्म्माभिज्ञ, सर्व्वशास्त्रपारदर्शी और सत्कर्म्मानुष्ठायी थे। उनके राज्यमें वाणप्रस्थीलोग वनवासी हो ग्रामवार्त्तासमूहमें स्पृहाहीन रहकर वेदोदित पथका अनुसरण करते और यतिलोग सङ्ग और स्त्रीपरिहारपूर्व्वक वाक्य मन और शरीरका प्रभुत्व पा निस्पृह होकर रहते थे। इसतरह दूसरे अनुलोमजात व्यक्ति भी परासरागत अपना अपना कुलमार्ग अतिक्रम नहीं करते थे। उनके राज्यमें कोई अपुत्रक या दरिद्र नहीं था, सभी वृद्धकी सेवा करते और कालमें मृत्युके अधीन होते थे। इनके राज्यमें कोई चञ्चलस्वभाव, वाचाल,

हिंसक, वञ्चक, पाषण्ड, भण्ड, रण्ड या मौण्डिक नहीं थे। राज्यके सब स्थानमें ही वेदध्वनि, शास्त्रालाप, सदालाप, मङ्गलगीति और सतत वीणा वेणु मृदङ्ग प्रभृति बाजेकी सुमधुर ध्वनि श्रुतिगोचर होती थी। इनके राज्यमें यज्ञमें ही सोमपान होता, और कहीं पानसभा नहीं थी और पुरोडाशयज्ञके सिवा और किसी समयमें कोई भी मांस भक्षण नहीं करता था। इस राज्यमें कोई द्युतशीलो, अधर्म्म या तस्कर नहीं था। सभी पितृपदसेवा, देवार्च्चना, उपवास, व्रत और तीर्थसेवा अपना कर्त्तव्य समझते थे। स्त्रीगण स्वामिसेवा और स्वामिवाक्य पालनके सिवा और कुछ नहीं जानती थीं। सानवगण अपने अग्रजकी सेवा करते थे। भृत्यगण द्वारा प्रभु सर्व्वदा सेवित होते थे। हीनजाति व्यक्ति उत्कृष्टजातीय पुरुषका गुणगौरव सदा ही वर्णन करते थे। काशी और काशीस्थ देवगण सबसे पूजा पाते थे। पण्डितलोग सबके निकट भक्तिसहित सम्मान पाते थे। पण्डितगण द्वारा तपस्विगण, तपस्विगण द्वारा जितेन्द्रियगण, जितेन्द्रियगण द्वारा ज्ञानिगण और ज्ञानिगण द्वारा शिवभक्तगण नियत पूजित होते थे। उनके राज्यमें धनवान् मात्र होने वापी, कूप, तड़ाग और उपवनसमूहकी प्रतिष्ठा की थी और समस्तजाति ही हृष्टपुष्ट थी। व्याध और पशुघातीके सिवा सभी प्रशंसनीय कार्य्य करते थे। इसलिये देवगणने बहुतर अनुसन्धान करके भी अशेषगुणाधार पुण्यकर्म्मा उन राजाका अपकार करनेका कोई छिद्र नहीं पाया। फिर देवगुरु बृहस्पति, देवगणको इन धर्म्मिष्ठ वरिष्ठ और मन्त्रवित् राजाका अपचिकीर्ष देख उस विषयमें कहने लगे। बृहस्पतिने कहा, वह राजा मन्त्र, विग्रह, प्रयाण, अवस्थान, संश्रय और भेद विषयके जैसे ज्ञाता हैं, ऐसा और कोई नहीं है। सामादि उपायचतुष्टयमें मैं एकमात्र भेदको ही उपाय देखता हूं; किन्तु तपोबलशाली उन राजामें, वह भी कार्य्यसिद्धिकर होगा या नहीं, यह नहीं जानता। यद्यपि समस्त देवगण ही इन राजा द्वारा पृथ्वीसे निर्व्वासित हुए हैं, तथापि वहां देवप्रतीय अनेक ही इस समय भी अवस्थान करते हैं। जिन लोगोंका एक निमिषकाल अभाव होनेसे, उन नृपतिको और हमलोगोंकी कष्टकी अवधि नहीं है, वह जीवगणके अन्तश्चर और वहिश्चर हो वहां परम सम्मानसे अवस्थान करते हैं। उन लोगोंके उनका राज्य परित्याग करनेपर ही तुम्हारा अभीष्ट परिपूर्ण हो सकता है। देवगणने बृहस्पतिकी यह सब बात सुनकर उनको सहर्षसे शान्त होकर, उनको बन्दनाकर कहा, "ऐसा ही करना होगा।" तब देवराजने समीपस्थित अग्निको बुलाकर मधुरभावसे कहा, हे हव्यवाहन! आप

मर्त्त्यभूमिमें जिस मूर्त्तिसे अवस्थित हैं, वह मूर्त्ति, शीघ्र दिवोदासके राज्यसे अपसारित कीजिये। आपकी मूर्त्ति पृथ्वीसे स्थानान्तरित होनेपर, प्रजागणका अन्नाभाव निबन्धन हव्यकव्यक्रिया विलुप्त होगी; इससे वह लोग राजाके प्रति विरक्त होंगी। राजा प्रजागणका विरागभाजन होनेपर, उनका बहुक्लेशसे अर्ज्जित राजशब्द निरर्थक होगा; प्रजारञ्जक होनेसे लोग भूपालको 'राजा' कहते हैं, किन्तु उनका प्रजारञ्जन विनाश होनेपर, राजशब्द और राज्य ध्वंस होगा। विरक्त प्रजागण द्वारा परित्यक्त राजाका कोष, दुर्ग और बलसम्पत्ति रहनेपर भी नदी किनारेके वृक्षकी तरह शीघ्र विनाश होता है। प्रजा ही राजाके त्रिवर्गसाधनकी प्रधान सहाय है; वह प्रजा क्षीण होनेपर राजाका धर्म्म, अर्थ, काम, यह त्रिवर्ग भी क्षीण होता है। राजाके त्रिवर्गक्षय होनेपर इहलोकमें और परलोकमें कष्टकी सीमा नहीं रहती। अग्निदेवने इन्द्रकी ऐसी बात सुनकर शीघ्र ही पृथिवीसे योगसाहाय्यसे स्वदेह अन्तर्हित की। उन्होंने इन्द्रवाक्यसे आहवनीय हो, गार्हपत्य और दक्षिणारूप निज मूर्त्तित्रय मात्र संहारकर अपनी दाहिका शक्तिके सहित जठराग्निको भी आकृष्ट किया। इसतरह अग्निके भूलोक परित्याग करनेपर, मध्याह्न समयमें दिवोदास राजाने तात्कालिक

उपासना समापनकर भोजन गृहमें प्रवेश करते ही देखा, पाचक लोग बार बार कांपते हैं और उन्हें क्षुधित जानकर भी निवेदन करनेमें कुण्ठित नहीं होते। पाचकगणने कहा,—हे सूर्य्याधिकतेजस्विन्! तेजोजितानल! रणपण्डित! हे नृपति! यदि हमलोगोंको आपसे कोई भय न रहे, तो कहनेका यह समय न होनेपर भी हमलोग नतभावसे निवेदन करते हैं। कार्त्तिकने कहा, फिर सौम्यमूर्त्ति राजाके कटाक्षक्षेपसे वह कहनेमें आदिष्ट हो कहने लगी, हे महाराज! आपका दुःसह प्रताप सह्य करनेमें अपारग हो या और किसी तरहसे भवदीय मर्म्मानभिज्ञ हो अग्निदेव पाकशालादि शून्यकर कहां चले गये, वह हमलोग नहीं जानते। अग्निके अभावसे किसी तरह भी पाककार्य्य नहीं हो सकता, तथापि हमलोगोंने सूर्य्यतेजसे कुछ वस्तु पाक की है; आपकी आज्ञा पाते ही उसे ले आवेंगे और विवेचना होती है, कि वह पाक उत्तम ही हुआ है। असीम बलशाली धीमान् राजाने पाचकगणकी ऐसी बात सुन विवेचना की, कि यह निःसन्देह देवताओंका काम है। फिर क्षणकाल स्थिर हो चिन्ता करके देखा, कि अग्निने केवल उनकी पाकशाला और जठरगुहा ही परित्याग नहीं किया है, वरञ्च समस्त पृथिवी परित्यागकर स्वर्लोक गमन किया है। तब उन्होंने

विचार किया, कि अग्नि गये हैं, उत्तम है, इससे मेरा कुछ अपकार नहीं ; मैं अग्निके सहायसे राजेश्वर नहीं हुआ हूं; ब्रह्मासे ही गौरवके सहित मैंने राज्य पाया है। प्रत्युत सूक्ष्मभावसे देखनेपर इसमें देवगणकी ही हानि होगी। ऐसे समय जनपदवासियोंके सहित पुरवासिगण आकर उपस्थित हुए, द्वारपाल राजाज्ञासे उनलोगोंको पुरके भीतर ले चला। पुरवासिगणने राजसन्निधानमें अपने अपने विभवानुरूप भेंट रख उनका यथोचित अभिवादन किया। राजाने किसीको मधुरवाक्यसे, किसीके प्रति सानन्द दृष्टि सञ्चालनसे, किसीको हस्तपीड़न द्वारा समादृत किया। फिर उन लोगोंके राजादेशसे महार्ह आसनपर उपविष्ट होनेपर राजाने उन लोगोंके मुखकी आकृति देखकर मनोभिप्राय अवगत हो कहा,—हे पुरवासी प्रजागण! तुम लोग भय न करना ; यद्यपि देवगणने मेरे अपचिकीर्षु हो अग्निको स्थानान्तरित किया है, तथापि मेरा इससे कुछ भी पराभव नहीं हुआ। हे प्रकृतिपुञ्ज! मैं इस सम्बन्धमें पहले ही कुछ करनेका अभिलाषी होकर भी उपेक्षा ही करता था। आज बहुत दिनोंके बाद देवताओंने मुझे स्मरण करा दिया। अनलने प्रस्थान किया है, अच्छा ही हुआ। वायु भी यह स्थान परित्याग करें ; वरुण, चन्द्र और सूर्य साथ ही सत्वर अन्तर्हित हों ; मैं तपस्या बलसे जनपदवासियोंका आनन्दवर्द्धक शस्यसमूह उत्पादनकर इन्द्रकार्य्य सम्पादन करूंगा। मैं ही तपस्या और योगके साहाय्यसे अपनेको वह्निरूपसे त्रिधा विभक्तकर पाक, यज्ञ और दाहकार्य्य सम्पादन करूंगा। मैं अन्तर्व्वहिश्चर वायुरूपी हो जीवकी जीवनरक्षा करूंगा। और अन्तर्व्वृत्ति ज्ञात हूंगा और मैं ही जीवकी जीवनरक्षिणी जलमयी मूर्त्ति धारणकर प्रजाकी जीवनरक्षा करूंगा। यह सब पदार्थ मेरे राज्यसे दूर हो। जिस समय सूर्य्य या चन्द्रको राहु आकर ग्रास करते हैं, तब उन लोगोंके अभावसे भी हमलोग जीवन धारण करते हैं। क्षयी और कलङ्की चन्द्रमा मेरे राज्यसे प्रस्थान करें, मैं ही चन्द्ररूप धारणकर प्रजाका आनन्दवर्द्धन करूंगा। सूर्य्यदेव मेरे वंशके आदिपुरुष कहकर माननीय हैं, केवल वह रहें और सुखसे गमनागमन करें ; इसलिये, कि वह एकमात्र जगत्के प्राणभूत और विशेष मेरे कुलदेवता हैं। वह जगत्के अनपकारी हैं, यही उनका एकमात्र व्रत है। पौरप्रजागण श्रुतिपुट द्वारा ऐसा राजाका वाक्यामृत पानकर सानन्द हृदयसे प्रसन्नमुखसे राजाका अभिवादनकर अपने अपने घर गये, राजा दिवोदासने भी तपोवलसे इन सब देवताओंका रूप धारणकर उनकी अपेक्षा अधिकतर तेजस्वी हो

देवताओंका मर्म्मस्थान शत शत शल्य द्वारा विद्ध करने लगी। अहो! त्रिभुवनमें तपस्यासे सिद्ध न हो, ऐसा कुछ भी नहीं है।

त्रिचत्वारिंश अध्याय समाप्त॥ ४३ ॥

चतुस्त्वारिंश अध्याय।

शिवका काशीविरह-सन्ताप और योगिनी-प्रयाण।

कार्त्तिकेयने कहा,—महादेव मन्दराचलमें जिस मन्दिरमें अवस्थित हुए, उसका अति समुच्च चूड़ा सब असामान्य कान्तिशाली रत्नराजिद्वारा सुशोभित था। इस जगह शशिशेखर निरन्तर देवगणसे वेष्टित रहकर भी एकमात्र काशीविरहसे सर्व्वदा ही व्याकुल होने लगे; किसी तरह शान्ति लाभ नहीं कर सके। उन्होंने असह्य सन्ताप दूर करनेके लिये शरीरमें पङ्कीभूत चन्दन लेपन किया, वह भी क्षणमें शुष्क होने लगा और अति शीतल कोमल मृणालदल हाथोंमें कङ्कणकी तरह धारण किया, किन्तु उससे अपनी विरहवह्नि द्विगुणतर हुई देख उन्होंने दुःखसे कहा, "यह मृणाल नहीं, सर्प है।" वस्तुतः ईश्वरका वाक्य मिथ्या होनेका नहीं, इसलिये वह सर्परूपी हो आजतक उनके हाथोंमें विराज रहा है। क्षीरसागरमन्थनसे सुरगणने अतिकोमल शीतल और षोड़श कलासे पूर्ण जिन चन्द्रमाको पाया था, काशीवियोगव्याकुल आदिदेवका सन्ताप दूरीकरणाभिलाषसे मस्तकके ऊपर दिवामात्र वह पूर्णचन्द्र तीव्र सन्तापसे क्षीणदेह हो आजतक विराज रहे हैं और तभीसे विरही होकर उन्होंने मस्तकमें जटाभारमें स्वच्छतोया सुरनदीको धारण किया था, इस समय भी वह उसी भावसे रहती हैं। काशीविरहविधुर काशीपति काशीविरहसे असह्य यातना भोग करनेपर भी सभासद्गणके निकट उसे छिपाते, इसलिये वह कुछ भी नहीं जान सकते। इसकी अपेक्षा आश्चर्यका विषय क्या है, स्वयं जगदीश अपनी ही मूर्त्ति विशेष अग्नि द्वारा आप ही क्लेश पाने लगे और जिन शशिको तापनाशक जान भालदेशमें आश्रय दिया, वह आश्रित शशि ही उनके सन्तापकारण हुए? नीलकण्ठ, सदा ही गलदेशमें गरल धारणकर किसी तरहसे सन्ताप प्राप्त नहीं होते, किन्तु विरहकालमें सुधाकरकी सुधामय किरण भी सन्तप्त होने लगी। विरहका कैसा असामान्य सामर्थ्य है! सर्व्वदा ही शरीराश्रयी सर्पगणका विषमय निश्वास भी जिनको किसी तरहका क्लेशदायक नहीं होता, आज वही दुर्द्धर्षविभव महादेवकी तापशान्तिके लिये हृदयनिहित हरिचन्दनपङ्क भी सन्तापदायक होने लगा। जिनके कृपा करनेसे, जीव संसारके कुल भ्रमचक्र अतिक्रम करनेमें समर्थ होता है, उन्हीं काशीनाथको भी उस समय विरहयातनाकी शान्तिवासनामें गृहीत पुष्पमा-

लासे भी सम्पन्न हुआ था। जिनको स्मरण करनेसे जीवका सब सन्ताप विनष्ट होता है, वह जगत्पति भी काशीविरह सन्तापसे अकेले निर्जनका आश्रय करके प्रलापीकी तरह कहने लगे, मेरा यह असह्य सन्ताप काशीस्थ वायुका स्पर्शके सिवा जानेको नहीं; कारण हिमराशिमें अवगाहन करनेपर भी शान्त न होगा। दक्षसुताने पितृमुखसे पतिनिन्दा सुन देह-त्याग किया, मुझे जो असह्य सन्ताप हुआ था, सतीने फिर हिमालयके घर जन्म लेकर वह सन्ताप दूर किया था; हाय! उनकी अपेक्षा अधिक यातनाकर यह काशीविरह कैसे शान्त होगा? हे देवि! काशि! मेरा ऐसा सुदिन हो, कि जिनमें तुम्हारे अङ्गस्पर्शजनित सुखसागरमें अवगाहनकर यह विरहानलसे दग्धप्राय देह शीतल कर सकूं। हे जीवोंकी पापविनाशिनि काशि! तुम्हारा विरहजात अनल, भालस्थ चन्द्रका अमृत किरण भी घृतसंपृक्त वह्निकी तरह सदा वृद्धि पाता है। पहले सतीविरहवह्नि जैसे हिमालयसुतारूप सञ्जीवनौषधिलाभसे निर्वापित हुई थी, उसी तरह इस विरहसन्तापकी परम औषधि तुम्हारा दर्शन ही है। हाय! वह कैसे होगा? देवगणसे वह सन्ताप गुप्त रखकर निर्जनमें पूर्व्वोक्त प्रकारसे दुःख प्रकाश करने लगे। दूसरे सर्व्वसाक्षिणी जगन्माताने ही समझा, कि आशुतोष किसीके विरहसे व्याकुल हुए हैं, किन्तु उन्होंने भावको ऐसा छिपाया, कि देवी पार्व्वती उनकी अर्द्धाङ्गस्वरूपिणी होकर भी यह यातनाकर विरह किसलिये है, वह जान न सकीं। फिर एकदिन श्रीपार्व्वतीने विविध सुधास्रवाक्यसे उनका सन्तोष विधानकर पूछा। हे प्रभो! देवदेव! जगत्में ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो आपको दुर्लभ हो, वरञ्च आपकी विभूतिसे ब्रह्मादि देवगणका ऐश्वर्य्य है। निखिल जीवका विपद् विनष्ट हो रक्षाविधान होता है। हे नाथ! आपके सर्व्वशक्तिमान होनेपर भी किसके विरहने आपको ऐसा व्याकुल किया है? नाथ! यह चराचर क्षणकाल आपकी दृष्टिवहिर्भूत होनेसे प्रलय उपस्थित होता है और ब्रह्मा विष्णु दोनो आपके सेवक होनेकी वजहसे ही सृजनपालन करते हैं। नहीं तो अपना अपना ऐश्वर्य्य खो देते हैं। हे नाथ! चन्द्र, सूर्य्य और अग्नि यह तीनो, तीननेत्ररूप धारणकर आपकी देहमें ही अवस्थित हैं; सुतरां कभी यह परितापजनक न होंगे और भगवती गङ्गा सर्व्वसन्तापनाशिनी जलमयी मूर्त्तिधारणकर आपके जटाजूटमें अवस्थान करती हैं, तथापि आपको यह अहेतुक सन्ताप क्यों उपस्थित हुआ? हे महेश्वर! जो सब सर्प आपकी देहमें विचरण करते हैं, उन्हें ऐसा सामर्थ्य कहां, कि वह आपका शरीर विषसंयोगसे सन्तप्त

करें ? हे सतीसर्व्वस्वधन ! मैं सदा आपकी सेवा करती हूं, किन्तु किसी तरह भी सन्तापका कारण नहीं देख सकती ; तब किसलिये आप यह असह्य सन्ताप वहन करते हैं, वह मुझसे कहिये ! विश्वमूलभूता भगवतीकी ऐसी समर्थसम्पन्न बात समाप्त होनेपर, विश्वपति महादेवने कहा,—हे काशि ! "अष्टमूर्त्तिसे संसारमें प्रमाण स्वरूप महादेवकी भी तुम्हारे विरहसे अवस्थाविपर्य्यय हुआ है।" इस विरहकी महीयसी शक्तिप्रभावसे ही पार्व्वती भी जान गई हैं। तब सती महादेवकी बातसे उनका ताप काशी विरहजनित है, समझकर स्वयं ही सादर काशीविषयक बात कहने लगीं। पार्व्वतीने कहा, हे नाथ ! जिस समय समुद्रकी जलराशि उच्छलित हो नभस्थल पर्य्यन्त व्यापित होती है, उस प्रलयमें भी, मृणालदण्डपर रक्तकमलकी तरह, आप जिस काशीकी रक्षा त्रिशूलाग्रपर करते हैं, इस समय चलिये वहीं चलें। हे काशीपते ! पृथिवीस्था होकर भी पृथिवीमें अगणनीया काशीदर्शनसे मैं जो आनन्द अनुभव करती हूं, वह मन्दराद्रि परम सुन्दर होनेपर भी मेरा मन वहां सुखी नहीं रहता और जहां कलि या पापसे कोई भय नहीं, जहां मरनेसे फिर जठरयन्त्रणा भोगना नहीं पड़ती, हे देव ! कब मैं उस काशीका दर्शनकर आत्माको चरितार्थ करूंगी ? हे देव ! यह सच है, कि इस पर्व्वतमें बहुतर सुरम्य समृद्धिशाली प्रदेश हैं, किन्तु मैं निश्चय कहती हूं, कि काशी जैसी सर्व्वगुणसम्पन्ना कोई पुरी ही नहीं देखी। हे भवभयनाशन ! संसारमें शत शत नगरी हैं, जिनके दर्शनमात्रसे अन्तर विस्मयरससे पुलकित होता है ; किन्तु वह आपकी नगरी काशीका सौन्दर्य्य देख वह सब तुच्छ बोध होती हैं। हे नाथ ! काशीविरह मुझे आपकी अपेक्षा अधिक सन्ताप देता है, वह मनोहारिणी काशी या मेरी जन्मभूमि हिमालयको बेदेखे वह घोर ताप किसी तरह निवारण न होगा। हे देव ! पहले मैंने सर्व्वसन्तापनाशिनी शान्तिदायिनी काशीमें आकर ही जन्मभूमिस्नेह भूलकर वहांसे भी समधिक शान्ति पाई थी। इस समय एक काशीके विरहसे जन्मभूमिविरह-जनित सन्ताप भी आकर मुझे कष्ट दे रहा है। इस संसारमें किसीने कभी किसी जगह साक्षात् मुक्ति नहीं पाई ; किन्तु आपके प्रसादसे इस काशीमें जीव सब सुख भोगकर चरममें मूर्त्तिमती मुक्तिका आश्रय लाभ करते हैं। काशीमें मरनेसे बिना कष्टके जैसी मुक्ति मिलती है, और किसी जगह ब्रह्मचारी हो एकाग्रचित्तसे ब्रह्मसाधन या बहुतर यज्ञ या ब्रह्मज्ञानसे भी वैसे सुखसे मुक्ति नहीं होती। वहां धनहीन दरिद्र भी जो सुख अनुभव करते हैं, स्वर्ग, मर्त्त्य, पाताल इन तीनों लोकके भीतर

कभी वैसा सुख लाभ नहीं होता। हे शिवे! आपके अविमुक्तक्षेत्रमें सदा ही मुक्तिस्वरूपा लक्ष्मी विराजमाना हैं। यदि जीव भ्रमक्रमसे भी एक बार उसकी चिन्ता करें, तो षड्ङ्ग-योगका फल अनायास ही उनको करस्थ होता है। हे नाथ! काशी प्रवेश करनेसे ही जीवका चित्तचाञ्चल्य विदूरित हो जैसी देहसिद्धि लाभ होती है, अन्यत्र षड्ङ्गयोगके बार बार अभ्याससे भी उसके होनेकी सम्भावना नहीं। जो मनुष्य काशीदर्शनजन्य पुण्यसञ्चय नहीं करते, उनका पानीके बुलबुलेकी तरह क्षणस्थायी जन्म नितान्त निष्फल है। उन लोगोंकी अपेक्षा काशीके पशु-पक्षी भी श्रेष्ठ गण्य हैं। जो व्यक्ति काशी सम्मुखीन हो एकाग्रचित्तसे विस्फारित-लोचनसे काशीसन्दर्शनकर वहां वास करते हैं, उनके वह दोनो नेत्र, मुख, शरीर और मन, सभी कृतार्थ होते हैं। काशीस्थ मणिकर्णिकाकी धूलि अति पवित्र है, देव-दुर्लभ और तमोगुणकी विनाशक है; जो व्यक्ति उस जगह आपको प्रणामकर वहांकी समुज्ज्वल रजः ललाटदेशमें धारण करते हैं, उनका मनुष्यजन्म सफल है। जो व्यक्ति मणिकर्णिकामें देह त्याग करते हैं, आप उनके कर्णकुहरमें तारकब्रह्म नामरूप सुधा ढालते हैं, इसलिये वह स्थान देवलोक, नागलोक और सत्यलोकसे भी अतिशय श्रेष्ठ गण्य है। वहां जानेसे ही जीवकी तमोराशि विदूरित होती है, अग्नि और चन्द्रकी किरणपराभवकारिणी मणिकर्णिकाको बहुजन्मकी तपस्या न रहनेसे लाभ नहीं किया जाता। मेरी विवेचना है, उस जगह मृत जीवगणके नित्यानन्दमय सुखसागरमें डुबानेकेलिये निर्व्वाण स्वयं शरीरी हो सुकोमल शय्यापर शयन किये हुआ हैं। जहां मृत्युको परम लाभ विवेचनासे जीवगण गमनकर तत्रत्य बालुकाराशि द्वारा पूर्व्वमृत मुक्तिप्राप्त जीवगणकी गणना करते हैं, उस मणिकर्णिकाकी शोभा कैसी अपूर्व्व-रमणीय है! स्कन्दने कहा, हे अगस्त्य जगदम्बिका इसतरह काशीकी वर्णनाकर वहां जानेके लिये फिर महादेवसे कहने लगीं, हे प्रमथेश! हे जगदीश! नित्यस्वाधीनवृत्ते! वरद! हे प्रभो! जिसमें उस आनन्दकानन काशीधाममें फिर जा सकूं, सत्वर उसका उपाय विधान करिये। महादेव इस तरह अमृतकी अपेक्षा तृप्ति-साधक काशीस्तावक सुन्दर सतीवाक्य सुनकर कहने लगे, अहो प्रिये! गौरि! तुम्हारे वचनामृतपानसे अतिशय तृप्त हुआ हूं। इस मूहूर्त्तमें ही काशी जानेके लिये उद्योग करता, किन्तु हे देवि! तुम मेरे कठोरव्रतकी बातसे विशेष ज्ञात हो, कि मैं अन्योपभुक्त वस्तु उपभोग नहीं करता। सम्प्रति ब्रह्माके वरसे बलवान् राजा दिवोदास काशीश्वर हो, उसे राज-नीतिके अनुसार भोग करते हैं; सुतरां

उनके अधीन हो काशीका अवस्थान लज्जाकर होनेकी वजह, वहां जानेका कोई उपाय नहीं देखता हूं। यदि उन धर्म्मानुसार प्रजापालक राजाको किसी तरह काशीसे अपसारित किया जाय, तभी जानेका सदुपाय हो सकता है। पापिष्ठके काशीवासमें विघ्न किया जाता है, किन्तु वह अति धार्म्मिक हैं; उनकी धर्म्मबुद्धि रहते सहज ही वह काशीसे बहिष्कृत नहीं किये जा सकते। यदि कोई वहां जाकर दिवोदासको धर्म्मसे स्खलितकर सके, तभी काशीसे वह दूर किये जा सकते हैं। हे प्रिये! धर्म्मपथके पथिकोंको बलपूर्व्वक विघ्न करनेसे उनका कुछ नहीं होता, प्रत्युत विघ्नकारी ही विपन्न होते हैं। हे शिवे! मैं उनका किसी तरहका धर्म्मस्खलन न देखनेसे काशीसे उन्हें निकाल नहीं सकता; कारण धार्म्मिकगण मेरे द्वारा ही सदा रक्षित होते हैं। इस संसारमें धार्म्मिकगणपर जरा आक्रमण नहीं कर सकता, मृत्यु ग्रास करनेमें समर्थ नहीं होती और किसी तरहकी व्याधिसे वह पीड़ित नहीं होते। महादेव इस तरह कह रहे थे, कि इसी समय उन्होंने सामने स्वकार्य्यसाधनक्षम अति प्रौढ़ योगिनीगणको देखा। हे मुने! अतःपर महेश्वरने पार्श्ववर्तीसे परामर्शकर उनलोगोंको बुलाकर आज्ञा दी, कि हे योगिनीगण तुमलोग शीघ्र काशीधाम जाओ। वहां राजा दिवोदास धर्म्मानुसार प्रजापालन करते हैं; जिसमें वह राजा धर्म्मच्युत हो काशीसे दूरीकृत हों, वह करो। तुम सब योगबलसे मायाविनी हो सहज ही यह कार्य्य सिद्ध कर सकोगी। हे योगिनीगण! जिसमें मैं फिर काशीपुरीको नूतन भावसे निर्म्माणकर वहीं अवस्थान कर सकूं, उसका उपाय करो। योगिनीगणने महादेवके ऐसे आदेशको शिरोधार्य्य कर उनको प्रणामकर वहांसे प्रस्थान किया। वह अतिशय आनन्दसे परस्पर बातचीत करती करती आकाशमार्गसे उड्डीयमान हो, मनकी तरह वेग धारणकर काशीकी ओर चलीं। राहमें जानेके समय वह सब इस-तरह बातचीत करने लगीं;—आज हम सब कृतार्थ हुईं; कारण, स्वयं महादेवने अनुग्रहकर हमलोगोंको काशी भेजा है। आज हमलोगोंने दो दुर्लभ वस्तु पाई,—एक भगवान्‌की अनुग्रह, दूसरा काशीसन्दर्शन। इसतरह योगिनीगणने आनन्दितमनसे मन्दराचलसे आकाशपथमें उड़कर अतिद्रुतगति अवलम्बनकर क्षणकालमें दूर होसे शिवपुरी काशीको देख पाया।

चतुश्चत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंश अध्याय।

चतुःषष्टि योगिनीका काशीमें आगमन।

कार्त्तिकेयने कहा, इसके उपरान्त योगिनीगण दूरसे दृष्टि प्रसारणकर काशी-

पर्य्यवेक्षणकर अपने अपने नेत्रकी विशालताकी भूयसी प्रशंसा करने लगीं। काशीकी समुच्च अट्टालिकासमूहके ऊपरी भागमें उड्डीयमान सब पताका और तत्रत्य रत्नराजिके विमल किरणसे समुद्भासित निर्म्मल नभस्तल निरीक्षणकर, उनलोगोंने विवेचना की, कि नगरी दूरस्थ पथिकोंको सादर आह्वान करती है। तब योगिनीगण मायाबलसे अपना अपना दिव्यरूप अन्तर्हितकर मूर्त्तिवेश धारणकर काशीमें आईं। किसीने योगिनी, किसीने तपस्विनी, किसीने सैरिन्ध्री, किसीने मालिनी, किसीने हज्जामकी पत्नीका वेश धारण किया। कोई चान्द्रायणव्रतनी कोई सूचीकर्म्मकुशला, कोई चिकित्सानिपुणा हुईं। किसीने धात्री, किसीने व्यालग्राहिणी, किसीने क्रयादिकार्य्यमें सुनिपुणा वेश्या, किसीने दासीका वेश धरा। कोई नर्त्तकी, कोई गायका, कोई वेणुवाद्यसे, कोई वीणावाद्यसे, कोई मृदङ्गवाद्यसे अभिज्ञा हुईं। कोई वशीकरणकारिणी, कोई कलाविद्यामें कुशला, कोई मुक्तामालाग्रथिता, कोई गन्धविभागविधिज्ञा कोई आलापकुशला हुईं। कोई गन्धविभाग विधा जानने लगीं। कोई रज्जुसे, कोई वंशमें अधिरोहणनिपुणा हो लोकानुरञ्जन करने लगीं। कोई छिन्न वस्त्र परिधानकर राहमें उन्मत्तकी तरह व्यवहार दिखाने लगीं। कोई अपुत्रककी पुत्रदा हुईं। कोई गणकपत्नी बनकर लोगोंके हाथपैरकी रेखा देख शुभाशुभ चिह्न कहने लगीं। कोई चित्रकारिणी हो जनगणका मन हरण करने लगीं। कोई वशीकरणमन्त्रज्ञा, कोई गुटिका सिद्धिदायिनी, कोई अञ्जनसिद्धिदा हुईं। कोई पादुकासिद्धा, कोई धातुपरीक्षामें सुनिपुणा; कोई जलस्तम्भन, अग्निस्तम्भन, कोई कोई वाक्यस्तम्भन कार्य्यमें कुशला हुईं। कोई खेचरी, कोई अदृश्या होनेका सदुपाय प्रचार करने लगीं। कोई आकर्षण, कोई कोई उच्चाटन विद्याकी शिक्षा देने लगीं। कोई कोई ज्योतिःशास्त्रमें पण्डिता बनकर कोई कोई लोगोंका चिन्तित विषय प्रदान कर, कोई कोई निजशरीर लावण्यसे युवकोंका चित्तहरणकर भ्रमण करने लगीं। यह योगिनीगण नानारूप वेषभूषा द्वारा बहुविध रूप धारणकर गृहस्थोंके घरघर विचरण करने लगीं; इसतरह एक वर्ष अतीत होनेपर उन राजा दिवोदासका अनिष्ट करनेके लिये कोई छिद्र न पाकर सबने परामर्श करके "अकृतकृत्य हो अन्दर गमन श्रेयस्कर नहीं" विवेचनाकर काशीमें ही अवस्थान किया; कारण प्रभुके निकट क्रियादक्ष होनेकी वजह लब्धसम्मान कोई व्यक्ति प्रभुकार्य्य असम्पन्न रख उनके सन्निधानमें जानेका साहस नहीं करते। हे मुने! योगिनीगणने और भी देखा, कि हमलोग प्रभुके सन्निधानमें भी रह सकती

हैं; किन्तु काशी त्यागनेसे बचने नहीं पावेंगी। कुपित प्रभु, साधुभृत्यकी जीविका मात्र उच्छेद करते हैं; किन्तु काशी खोनेसे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष यह चतुर्व्वर्ग ही खो जाते हैं। वह लोग ऐसा विचारकर तबसे आजतक त्रिभुवनसञ्चारिणी हो काशीमें ही अवस्थान करती हैं। जो व्यक्ति एकबार काशीको पाकर उपेक्षा करते हैं, निश्चय उन मूढ़का चतुर्व्वर्ग विनष्ट होता है। जो दुर्म्मति मुक्तिप्रदा श्रीमती काशीको प्राप्त हो अन्यत्र गमनकी अभिलाषी होते हैं, उनका सभी निष्फल है। हमलोगोंने ईश्वरकी दयाके पात्र न होकर भी आज काशीसन्दर्शनकर जो पुण्यसञ्चय किया, उसके प्रभावसे ही वह सदय होंगे। इससे ही हम सब कृतार्थ हुईं। कुछ दिनके भीतर ही सर्व्वज्ञ देव सतीनाथ काशीमें आवेंगे; कारण काशीके सिवा कहीं उन्हें सन्तोष नहीं। इस काशीक्षेत्रमें भगवानको अद्भुत भक्तिमात्र है, वह सबकी दृष्टिके बहिर्भूत है; एकमात्र महादेव ही वह सुख अनुभव करनेमें समर्थ हैं। योगिनीगण ऐसा स्थिरकर मायाबलसे अपनी अपनी मूर्त्ति आवृत रख उस अविमुक्तक्षेत्रमें ही अवस्थान करने लगीं। व्यासने कहा, मुनिवर अगस्त्यने यह सब बातें सुनकर फिर पूछा, हे देव! कार्त्तिकेय! उन योगिनीगणका क्या नाम है? काशीमें उनलोगोंकी पूजा करनेसे कैसा फल लाभ होता है और कौन कौन विशेष दिनमें उनकी पूजा अवश्य कर्त्तव्य है, वह कहिये। अगस्त्यके इसतरह पूछनेपर देव षड़ाननने कहा, हे मुने! यह सब बातें कहता हूं, तुम सुनो। कार्त्तिकेयने कहा, हे कुम्भयोने! मैं योगिनीगणका नाम कहता हूं, इसके सुननेसे, जीवका सब पाप विनष्ट होता है। गजानना, सिंहमुखी, काकतुण्डिका, उष्ट्रास्या, हयग्रीवा, उष्ट्रग्रीवा, वाराही, शरभानना, उलूकिका, शिवारावा, मयूरी, विकटानना, अष्टवक्रा, कोटराक्षी, कुब्जा, विकटलोचना, शुष्कोदरी, लोलजिह्वा, श्वदंष्ट्रा, वानरानना, ऋक्षाक्षी, केकराक्षी, वृहत्तुण्डा, सुराप्रिया कपालहस्ता, रक्ताक्षी, शुकी, श्येनी, कपोतिका, पाशहस्ता, दण्डहस्ता, प्रचण्डा, चण्डविक्रमा, शिशुघ्नी, पापहन्त्री, काली, रुधिरपायिनी, वसाधरा, गर्भभक्षा, शवहस्ता, अन्त्रमालिनी, स्थूलकेशी, वृहत्कुक्षी, सर्पास्या, प्रेतवाहना, दन्दशूककरा, क्रौञ्ची, मृगशीर्षा, वृषानना, व्यात्तास्या, धूमनिश्वासा, व्योमैकचरणा, ऊर्द्धदृक्, तापनी, शोषणीदृष्टि, कोटरी, स्थूलनासिका, विद्युत्प्रभा, वालाकास्या, मार्ज्जारी, कटपूतना, अट्टाट्टहासा, कामाक्षी, मृगाक्षी, मृगलोचना, इस चतुःषष्टि नामका जप जो व्यक्ति प्रतिदिन त्रिसन्ध्या करते हैं, उनकी दुष्टबाधा दूर होती है। यह सब पाठ करनेसे डाकिनी, शाकिनी, कुष्माण्ड या राक्षसगण

किसी तरहका उपद्रव नहीं कर सकती। यह सब नाम उच्चारण करनेसे शिशुगणकी पीड़ा और गर्भिणीकी गर्भवेदना शान्ति होती है और युद्धमें, राजसभामें और विचारमें जय लाभ होता है। जो व्यक्ति योगिनीपीठकी सेवा करते हैं, उनका सब अभीष्ट पूर्ण होता है। योगिनीपीठके लिये अन्यमन्त्रके जपसे भी विशेष सिद्धि लाभ की जाती है। धूप, दीप, बलि और उपहारादि द्वारा योगिनीगणकी पूजा करनेसे, वह सन्तुष्ट हो अभीष्ट प्रदान करती हैं। शरत्कालमें जो व्यक्ति यथाविधि योगनीपीठमें पूजाकर घृत द्वारा होम करते हैं, उन्हें सब तरहका सिद्धिलाभ होता है। आश्विन मासके शुक्ल प्रतिपद्से आरम्भकर नवमी पर्य्यन्त योगिनीगण पूजित होनेपर, अभीष्ट प्रदान करती हैं। जो कृष्णपक्षीया, चतुर्द्दशीको उपवासी रह योगिनीपीठमें रात्रिजागरण करते, उन्हें अनन्तफल होता है। जो भक्तिसहित प्रत्येक नामके आदिमें प्रणव और अन्तमें चतुर्थी विभक्ति दे रात्रिकालमें सूक्ष्मवदरी परिमाण घृताक्त गुग्गुल द्वारा पूर्व्वोक्त चतुःषष्टि योगिनीका नाम उल्लेखकर होम करते हैं, उन्हें अनन्तसिद्धि लाभ होती है। चैत्रमासके कृष्णप्रतिपद्को, पुण्यात्मा व्यक्ति क्षेत्रविघ्न शान्तिमानससे योगिनीगणकी यात्रा करेंगे। जो व्यक्ति इस दिन अवज्ञाकर योगिनीयात्रा नहीं करते योगिनीगण उन काशीवासियोंका विघ्न करती हैं। योगिनीगण काशीमें मणिकर्णिकाके ऊपर ही अवस्थान करती हैं। उनको नमस्कार करनेसे मानवका सब विघ्न दूर होता है।

पञ्चचत्वारिंश अध्याय समाप्त।

षट्‌चत्वारिंश अध्याय।

लोलार्क-वर्णन।

कार्त्तिकेयने कहा, हे मुने! योगिनीगणके काशी जानेपर फिर महादेवने नितान्त अधीर हो, वहां सूर्य्यको भेजनेके मानससे कहने लगे, हे दिवाकर! अरीहि-धर्म्मरूपी राजा दिवोदास जहां राजत्व करते हैं, "उस पुण्यक्षेत्र काशीमें तुम शीघ्र जाओ। वहां उन राजाकी पापबुद्धि हो, जिसमें सत्वर उस क्षेत्रमें विप्लव उपस्थित हो, वह करो; उन्हें कभी अपमानित न करना; कारण धार्म्मिकका असम्मान करनेसे स्वयं ही अवमानित होना पड़ता है और गुरुतर पापराशि वहन करना पड़ती है! यदि तुम निज बुद्धिबलसे किसी तरह यह काम सम्पादन कर सको, तो इस नगरमें दुःसह किरणजाल विस्तारकर आनन्दसे चिरदिन विराजोगे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य्य, यह कोई भी उन्हें वश नहीं कर सकता। अधिक क्या, स्वयं काल भी उनसे पराजित हैं; जबतक जीवकी बुद्धि और मन धर्म्मपर स्थिर

रहता है, तबतक किसी तरहको विपदसे भी उन्हें भय नहीं रहता। हे रवे! संसारमें किसीका भी चेष्टित तुमसे अज्ञात नहीं है; अतएव तुम शीघ्र कार्य्यसिद्धिके लिये गमन करो। स्कन्दने कहा, दिवाकर शिवका आदेश ग्रहणकर निज गमनचारिणी मूर्त्तिके सहायसे काशी अभिमुख गमन करने लगे। इस समय उनका मानस काशीदर्शनोत्सुक होनेकी वजह वह स्वयं सहस्रपाद होकर भी असंख्य चरण होनेके अभिलाषी थे। काशीदर्शनलालसासे उन्होंने अविश्रान्त गमनकर अपना "हंस" नाम सार्थक किया था। जीवगणके अन्तश्चर और वहिश्चर सूर्य्यदेव काशीमें आ उन राजाका कुछ भी अधर्म्म न देख एक वर्ष काशीमें हो उनके छिद्रानुसन्धानमें रहे। सूर्य्य किसी दिन अतिथिके वेशमें उन राजाके राज्यमें दुर्लभ वस्तुकी प्रार्थनासे नानास्थान भ्रमण करते; किन्तु कहीं उनकी प्रार्थित वस्तु दुर्लभ न होती। किसी दिन दाता हो दीन दुःखियोंका अभीष्ट पूरण करते, किसी दिन स्वयं दीन सजकर विचरण करते थे। किसी दिन गणक होते; किसी किसी दिन प्रजाके बीच शास्त्रका कुटिलअर्थ कर अविधिकार्य्य प्रतिपन्न करते। किसी दिन नास्तिक बनकर अप्रत्यक्ष वस्तु या कार्य्य अस्वीकार करते। किसी समय जटाधारी, कभी कभी दिगम्बर, कभी विषविद्याविशारद, कभी पाषण्डधर्म्मज्ञ हो विचरण करते। किसी समय ब्रह्मवादी हो ब्रह्म प्रतिपन्न करते; कभी ऐन्द्रजालिक सजकर साधारणका मन मोहित करते। कभी नानाविध व्रतादिका उल्लेख और पातिव्रत्यधर्म्मका उपदेशकर पतिव्रताओंका हृदय आनन्दरसमें डुबा देते थे। कभी कापालिक होते। कभी ब्राह्मण हो सदनुष्ठान करते; किसी समय ब्रह्मज्ञानी किसी समय धातुवादी, कभी कभी राजपुत्र सजकर लोगोंका मन आकर्षण करते थे। कभी वैश्य, कभी शूद्र, कभी गृहस्थ, कभी ब्रह्मचारी, कभी वाणप्रस्थी, कभी प्रव्रज्याश्रमी, कभी सर्व्वविद्यानिपुण, कभी कभी सर्व्वज्ञ बनकर साधारणका चित्त विस्मयपूर्ण करते थे। ग्रहराज सूर्य्य इस तरह नानाप्रकारसे काशीमें भ्रमण करके भी किसीका भी किसी तरहका छिद्र न देख विशेष उत्कण्ठित हो अपनी निन्दा करने लगे; पराधीन होना कैसा अनिर्व्वचनीय कष्टकर है, जिससे किसी दिन यशोलाभकी आशा नहीं। सूर्य्यने कहा, यदि इस समय मैं अकृतकार्य्य हो सामान्य भृत्यकी तरह महादेवके पास उपस्थित होऊंगा, तो वह अपना कार्य्य कुछ भी सिद्ध न हुआ देख अवश्य क्रोध करेंगे। उनका क्रोध स्वीकार करके हो किस तरह वहां जाकर उनके सामने नीच भृत्यकी तरह दण्डायमान हूंगा? यदि

यह अपमान मुझे स्वीकार भी हो, तब भी जगत्पति रुद्रदेव यदि एक बार क्रोध संचित, मेरे प्रति तीक्ष्ण दृष्टिनिःक्षेप करेंगे, तब तो मैं उसी समय हरकोपानलसे पतङ्गकी तरह दग्ध हो जाऊंगा; उस समय स्वयं विधाता भी मेरी रक्षा न कर सकेंगे। सुतरां वहां जाना किसी तरह भी श्रेयस्कर नहीं है, इस समय क्षेत्र-संन्यास ग्रहणकर काशीक्षेत्रमें ही आश्रय निर्म्माणकर अवस्थान करूं। इसे किसी तरह परित्याग न करना होगा। फिर, प्रभुके निकट उनके कार्य्यको सदसदवस्था निवेदन न करनेसे जो पाप अर्ज्जित होगा, काशीवाससे अवश्य वह पाप विनष्ट होगा; कारण काशीवाससे गुरुलघु सभी पाप क्षयप्राप्त होता है। विशेषतः मैं स्वेच्छासे यह पाप सञ्चय नहीं करता; इसलिये महादेवकी ऐसी आज्ञा है, कि स्वधर्म-रक्षा पहले कर्त्तव्य है, इस क्षणभङ्गुर देहसे धर्म्मरक्षा करनेसे त्रिभुवन उसकी रक्षा करता है। अर्थ और कामका रक्षण निष्प्रयोजन है; यदि वही प्रयोजन होता, तब भुवनत्रयके सुखसाधन उन कामको भगवान्‌ने किसलिये अनङ्ग किया और यदि अर्थ ही सार होता, तो राजा हरिश्चन्द्रने सर्व्वभूमिके अधीश्वर होकर भी विषयमें कुछ भी स्पृहा क्यों नहीं रखी? एवञ्च दधीचि प्रभृति ब्राह्मणगणका और शिवि प्रभृति राजगणका व्यवहार स्मरण-कर धर्म्मको ही सार समझकर विवेचना करना उचित है। अवश्य मैं काशीसेवा-सम्भूत धर्म्मप्रभावसे शिवकोपानलसे रक्षा पाऊंगा, इसमें सन्देह नहीं। जैसे लोग करस्थ रत्न उपेक्षाकर कांच ग्रहण नहीं करते, वैसे ही कोई सचेतन व्यक्ति दुर्लभ काशीधाम लाभकर उसे परित्याग नहीं करते। जो व्यक्ति वाराणसीमें आकर अन्यत्र जानेके अभिलाषी होते हैं, वह अमूल्य निधिको पैरसे ठेलकर भिक्षा द्वारा धनसञ्चयकी वासना करते हैं। संसारमें सभी पुत्र, मित्र कलत्र, क्षेत्र और धन पाते हैं; किन्तु काशीलाभ सबके भाग्यमें नहीं है। जो अदृष्टवान् पुरुष, त्रिलोककी उद्धरणकर्त्री काशीको लाभ करते हैं, वह असुलभ अनुपम सुखसागरमें सर्व्वदा ही उतराते हैं। सतीनाथ कोप करके मेरे वाह्यतेजको ही हानि करेंगे, किन्तु मैं काशीवासी होनेपर आत्मज्ञानके लिये सुविमल तेज लाभ करूंगा। जबतक काशी-सेवाके लिये तेजःप्रकाश न हो, तबतक खद्योतकी तरह अपरापर तेजोराशि दीप्ति पाती है। विदितकाशीप्रभाव तमोनाशक सूर्य्यने इस तरह चिन्ताकर द्वादशधा विभक्त हो काशीमें ही अवस्थान किया; तबसे काशीधाममें लोलार्क, उत्तरार्क, साम्बादित्य, द्रौपदादित्य, मयूखादित्य, अरुणादित्य, खखोल्कादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्य और गङ्गादित्य,

इन द्वादश आदित्य द्वारा सदा पापीगणसे रक्षित होते हैं। काशीविलोकनसे दिवाकरका चित्त लोल हुआ था इसलिये उसका "लोलार्क" नाम हुआ, काशीमें दक्षिण ओर असिसङ्गमके निकट लोलार्क अवस्थित है, उससे काशीवासीका सदा ही मङ्गल होता है। अग्रहायणमासके रविवारको षष्ठी या सप्तमी तिथिमें लोलार्ककी वार्षिक यात्रा करनेसे, मनुष्यका सब पाप विदूरित होता है। एक वर्षमें मनुष्यका जो पाप सञ्चय होता है, इस दिन लोलार्कदर्शन करनेसे वह पाप मुहूर्तमें ही विनष्ट होता है। मनुष्य असिसङ्गममें स्नानकर शास्त्रानुसार पितृ और देवगणका श्राद्ध या तर्पण करनेसे, पितृऋणसे मुक्त होते हैं और लोलार्क सङ्गममें स्नान, दान, होम और देवतार्चना प्रभृति जो कुछ पुण्यकार्य्य किया जाय, सभी समस्त फल प्रदान करते हैं। सूर्य्यग्रहणके समय यहां ब्राह्मणको दान देनेसे तत्कालमें कुरुक्षेत्रमें दानकी अपेक्षा दशगुण अधिक फल मिलता है। माघ मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको असिगङ्गासङ्गमस्थलमें लोलार्कमें स्नान करनेसे, मनुष्यका सप्तजन्मार्ज्जित पाप विदूरित होता है। जो व्यक्ति शुचि हो प्रति रविवारको लोलार्कसन्दर्शन करते हैं, उनको इहलोकमें किसी तरहका दुःख नहीं रहता और प्रति रविवारको जो व्यक्ति लोलार्कके पादोदककी सेवा करते हैं, उनपर दद्रु प्रभृति रोग कभी आक्रमण नहीं करते। जो व्यक्ति काशीमें रहकर भी उनकी सेवा नहीं करते, वह सदा क्षुधा और रोगसम्भूत क्लेशसमूहसे पीड़ित होते हैं। यह तीर्थ काशीके यावतीय तीर्थोंका शिरोभाग है। अन्यान्य तीर्थचय इसके ही अङ्गमात्र हैं। कोई असिसङ्गम तीर्थके षोड़शांशके एकांश योग्य भी नहीं है। समुदयतीर्थमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, केवल इस सङ्गम स्थानमें अवगाहन करनेसे भी मनुष्य वही फल पाते हैं। हे मुनिवर! इसे अर्थवाद या स्तुतिवाद कहकर विवेचना न करना। यह यथार्थ बात है इसीलिये साधुगण अति समादरसे इसके ऊपर अत्यन्त श्रद्धा करते हैं। जहां साक्षात् विश्वनाथ और देवनदी गङ्गा विराज रही हैं, उस पुण्यक्षेत्रमें आत्माभिमानी मूढ़ तार्किकगण ही इस वाक्यको मिथ्यादोषसे कलुषित करते हैं, तर्कबलसे अलङ्कृत मूढ़लोग काशीके इन सब वाक्यको अर्थवादसे कल्पनाकर युग युगमें विष्ठाके कीट रूपमें जन्म ले कभी सद्गति नहीं पा सकते। हे मुनिवर! त्रिलोकीमण्डप भी अपूर्व्वमहिमासे जिसकी तुलना नहीं पा सकते, उस काशीकी महिमा कभी नास्तिक, वेदनिन्दक, अन्त्रजालि, अविधिकार्य्यकारी या जो शिश्न या उदरके लिये नितान्त लालायित हैं, उनके सामने वर्णन न करेंगे। काशीमें दक्षिण

औरसे पापराशि प्रवेश करनेमें समर्थ नहीं है; कारण वहां लोलार्कका असह्य सन्ताप और असिधाराकी प्रखर धार सदा ही उसे दूर करनेके लिये उद्यत हैं। इन लोलार्ककी महिमा, जीवके कर्णकुहरमें प्रवेश करनेपर, दुःखमय संसारमें उनको कुछ भी कष्ट नहीं रहता।

षट्चत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंश अध्याय।

उत्तरार्कका वर्णन।

स्कन्दने कहा, काशीकी उत्तर ओर अर्क नामक जो कुण्ड है, वहां ही उत्तरार्क नामक सूर्य्य अवस्थान करते हैं। महातेजा उत्तरार्क सुकृती जीवगणकी दुःखराशि दूरकर अनुपम आनन्द विधान करते हुए सदा काशीकी रक्षा करते हैं। हे मुनिवर! इन सूर्य्यसम्बन्धीय एक अतीव सुन्दर इतिवृत्त कीर्त्तन करता हूं, सुनो। पूर्व्वमें आत्रेयवंशसम्भूत शुभव्रत नामक एक ब्राह्मण काशीमें वास करते थे। वह सदा सत्कार्य्यका अनुष्ठान करते थे; उनकी शुभव्रता नामिका पत्नी भी उन्हींकी अनुरूपा हो पतिसेवाको प्रधानरूपसे गण्य रख सदा ही धर्म्मकार्य्यमें व्यापृता रहती थीं। कालक्रमसे उनके गर्भसे शुभव्रतके औरससे मूलानक्षत्रके प्रथम पादमें और वृहस्पति केन्द्रस्थित होनेपर शुभक्षणमें एक अति सुलक्षणा सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। वह कन्या पितृगृहमें लालिता हो शुक्लपक्षीय शशिकी तरह दिन दिन वृद्धि पाने लगी। क्रमसे वयःप्राप्ता होनेपर पितामाताकी प्रियकारिणी हो अति निपुणभावसे गृहकार्य्य सब निर्व्वाह करने लगी। जैसे जैसे उसका वयस अधिक हो यौवन उपस्थित होने लगा, वैसे ही वैसे मातापिताका मानस, प्रबलचिन्तास्रोतमें बहने लगा; उनलोगोंको सदा ही चिन्ता होती—किस उपायसे इस सुलक्षणा कन्याका विवाह करूंगा। कुलीन, युवा, सुशील, विद्वान्, धनी ऐसा सर्व्वगुणाधार वर इसके उपयुक्त है, उसके हाथमें पड़नेसे ही सुखभागिनी हो सकती है; किन्तु ऐसा सुपात्र कहां मिलेगा? इस तरह चिन्तामें सदा आसक्त रह शुभव्रत एक दिन दारुण ज्वरसे पीड़ित हो शय्यागत हुए; किसी औषधसे वह चिन्ताज्वर उपशान्त नहीं हुआ। कन्याके मूलानक्षत्रमें जन्मनिबन्धनदोष प्रयुक्तसे ही वह दारुण चिन्ता-ज्वरसे अभिभूत हो गृह, स्त्री, धन सभी परित्यागकर इहलोकसे अपसृत हुए। स्वामीका देहान्त देख शुभव्रता, स्नेहकी कन्याको भी भूल जगत्को सतीधर्म्म सिखा उनकी अनुमृता हुईं। स्वामी जीवित हों या मृत सब अवस्थामें ही पतिव्रता नारी उनका अनुसरणकर अपने परम धर्म्मकी रक्षा करती हैं। पतिचरणसेविका स्त्री कभी विपद्ग्रस्ता नहीं

होतीं इसलिये पुत्र, पिता, माता या और किसी वस्तुको उन पतिव्रताकी रक्षाका भार ग्रहण करना नहीं पड़ता। इसके उपरान्त उस कन्याने अति दुःखके साथ मृत पितामाताकी उर्द्धदैहिक क्रिया समापनकर शोककातरा हो किसी तरह दश दिन अतिवाहन किया। तब सुलक्षणा अपनेको दरिद्रा और अनाथा देख चिन्तासागरमें उतराती हुई सोचने लगी, कि मैं पितृमातृहीना अकेली कैसे इस संसार-समुद्रसे पार होऊंगी? मेरा कोई अभिभावक नहीं है, पितामाताने भी किसीके हाथमें मुझे अर्पण नहीं किया, इस समय यदृच्छा मैं किस तरहसे अपनी इच्छासे अभीष्ट व्यक्तिके गलेमें वरमाल्य दे उसे अभिभावक करूंगी? यदि किसीसे विवाह हो करूं, तो यदि वह गुणवान् या सद्गुणसम्भूत न हो या मेरे मनके साथ उसका अनैक्य हो, ऐसा होनेसे उसे लेकर कैसे संसार करूंगी? इसतरह वह सर्व्वगुणशालिनी सुलक्षणाने महाचिन्तासे व्याकुल होकर भी नित्य असंख्य युवकोंकी प्रार्थना अवहेलाकर किसीको भी स्वदेह दान न किया। अकालमें पितृमातृवियोग होनेके समयसे, नितान्त शोकसे अधीरा हो सुलक्षणा जनक-जननीका स्नेह स्मरणकर, संसारको असार समझ अपनी निन्दा करने लगी;—जिन्होंने मुझे उत्पादनकर पालन किया था; हाय! मेरे वह माता-पिता मुझे छोड़कर कहां गये? यह अनित्य संसार कुछ भी नहीं है, मेरे सामने मेरे जनक जननीने जो गति पाई है, इसी मुहूर्त्तमें भी इस नश्वर देहसे अपसारित हो, वही दशा पा सकती हूं। अतएव अनित्य देह पातकर नित्यधर्म्म सञ्चय करूंगी। जितेन्द्रिया कुमारी सुलक्षणा मन ही मन इस तरह निश्चयकर कठोर ब्रह्मचर्य्य अवलम्बनकर पूर्व्वोक्त उत्तरार्क सूर्य्यके सन्निधानमें स्थिरचित्तसे घोर तपस्या करने लगी। उसके तपस्यारम्भके दिनसे प्रत्यह एक कृष्णाङ्गी बकरी वहां आकर स्थिरचित्तसे उसका तपोव्यापार देखती थी, यह बकरी वहांके जो कुछ अनायास लभ्य तृण पत्रादि होते भक्षणकर उस अर्क-कुण्डका जल पानकर फिर अपने पालकके आलयमें जाती; फिर प्रभात होते ही सुलक्षणाके निकट आ उसीतरह प्रायः समस्त दिन अतिवाहित करती थी। इसतरह पांच या छः वर्ष अतीत होनेपर एक दिन महेश्वर पार्व्वतीसह पैदल यदृच्छाक्रमसे वहां उपस्थित हुए। भगवान्ने वहां आकर उत्तरार्कके पास उग्र तपस्यामें नियुक्ता तपःकृशा स्थाणुकी तरह निश्चला उन सुलक्षणाको देखा। उन्हें देखते ही पार्व्वतीने दयार्द्रचित्ता हो अनाथाको वरदानसे अनुगृहीत करनेके लिये जगत्पतिको अनुरोध किया। दयामय विश्वनाथने भी पार्व्वतीकी बातसे और

सुलक्षणाकी तपस्यामें ऐकाग्रता देख वर-प्रदानाभिलाषी हो कहा, हे सुव्रते सुलक्षणे! तुम्हारी कठोर तपस्यासे मैं प्रसन्न हो वरदानमें उद्यत हूं; तुम किस वस्तुकी अभिलाषिणी हो वह मुझसे कहो, महादेवका ऐसा अमृतोपम तापदूरक वाक्य सुनकर सुलक्षणाने नेत्र खोले; तब देखा, कि सामने उनके चिराराध्य धन शङ्कर, पार्व्वतीको वामभागमें रखे वरदानके लिये उद्यत हुए हैं। सुलक्षणा उनके दर्शनसे हाथ जोड़ नमस्कार करती हुई विचार करने लगीं, "किस वरकी प्रार्थना करूंगी?" इसी समय पुरोभागमें उस बकरीको देखकर फिर चिन्ता की, इस संसारमें सभी निज प्रयोजन सिद्धिके लिये जीवन धारण करते हैं, किन्तु जो परोपकारार्थ आत्मजीवन उत्सर्ग करते हैं, वही सार्थकजन्मा होकर रहते हैं। यह अनाथा बकरी मेरी तपः-साक्षिभूता रहकर बहुत दिनोंसे सेवा करती आती है; मुझे उचित है, कि इसके लिये ही वर प्रार्थना करूं। सुलक्षणाने इसतरह स्थिरकर महादेवसे कहा, हे देव! दयामय! यदि आपका मुझे वर देनेका अभिलाष हो, तो पहले इस बराकी बकरीके प्रति अनुग्रह करिये; कारण इस बकरीने मेरी बहुत सेवा की है; किन्तु यह पशु होनेकी वजह कोई अभिलाष व्यक्त नहीं कर सकती। भक्त-भयभञ्जन भगवान् महेश्वरने सुलक्षणाकी निःस्वार्थ परोपकारबुद्धि देख परम सन्तुष्ट हो पार्व्वतीसे कहा, हे देवि! गिरिजे! एकबार देखो,—साधुव्यक्तिकी कैसी परोपकारकारिणी महती बुद्धि होती है! संसारमें वही धन्य हैं और सब धर्म्म उनके ही करस्थ हैं, वह सर्व्वदा सर्व्वप्रकारसे परोपकारकी चेष्टा करते हैं। हे प्रिये! उसके सिवा सञ्चित जितने पुण्य हैं, वह चिरस्थायी नहीं; एकमात्र परोपकाररूप सुमहत् पुण्य ही दीर्घकाल वर्त्तमान रहता है। हे देवि! यह सुलक्षणा सबतरहसे प्रशंसाकी पात्री हैं। अब तुम यह कहो, कि इस समय इन्हें और छागीको कौन वर देकर सन्तुष्ट करूं। पार्व्वतीने कहा, हे सृष्टिकर्त्तृगणके भी विधातः! हे सर्व्वज्ञ! हे भक्तार्त्ति हारिन्! यह सुलक्षणा मेरी सखीरूपसे परिगणिता हों। कर्पूरतिलका, गन्धधारा, अशोका, विशोका, मलयगन्धिनी, चन्दननिश्वासा, मृगमदोत्तमा, कोकिलालापा, मधुरभाषिणी, गद्यपद्यनिधि, अनुतापा, इगज्ञ लेङ्गितज्ञा, कृतमनोरथा और गानचित्तहरा प्रभृति सखीगणसे जैसे मैं सदा आनन्द पाती हूं, इसलिये उन-लोगोंको अतिशय चाहती हैं, उसी तरह यह सुलक्षणा भी मेरी प्रतिपात्री हों। सुलक्षणा बाल्यावधिसे ब्रह्मचर्य्यका अनुष्ठान करती हैं, इसलिये इस पार्थिवशरीरको ही दिव्यवसन, दिव्य भूषण, दिव्य गन्ध और दिव्य माल्य परिधानकर दिव्य ज्ञानवती हो

चिरकाल मेरी सहचरी होकर रहें और यह बकरी काशीराजसुतारूपमें जन्म पाकर मर्त्यधाममें श्रेष्ठ विषयसुख भोगकर चरम समयमें नित्यानन्दमय निर्व्वाणपद पावे। हे देव! काशीपते! इस बकरीने पौषमासके रविवारको दारुण शीतजन्य क्लेश सहकर सूर्य्योदय न होनेपर ही अर्क-कुण्डमें स्नान किया है, उस पुण्यसे और मेरे वरप्रभावसे काशीराजकी स्त्रीरूपमयी कन्या होकर जन्म पावे। हे नाथ! आजसे इस कुण्डका नाम "वर्करीकुण्ड" हो और संसारमें यह बकरी सबकी पूज्या हो। पौष-मासके रविवारको काशीस्थ व्यक्तिमात्र ही भक्तिभावसे इस कुण्डमें उत्तरार्कदेवकी यात्रा करें। कार्त्तिकेयने कहा, हे महा-भाग अगस्त्य! तुमसे यह लोलार्क और उत्तरार्ककी महिमा वर्णन की; इसके उपरान्त साम्बादित्यका विषय कीर्त्तन करता हूं, सुनो! हे मुनिवर! जो व्यक्ति इन अर्कद्वयका पवित्र इतिहास सुनते हैं, उन्हें कभी व्याधिभय या दारिद्र्यनिबन्धन क्लेश उपस्थित नहीं होता।

सप्तचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥४७॥

अष्टचत्वारिंश अध्याय।

साम्बादित्य-माहात्म्य कथन।

स्कन्दने कहा, हे मैत्रावरुणि! सुनो। पूर्व्वमें यदुवंशमें देवकीके गर्भसे वसुदेवके औरससे, अग्निकी तरह अति तेजस्वी स्वयं देव वासुदेव दैत्यनाश द्वारा भूमण्डलके भार-हरणार्थ अवतीर्ण हुए थे। हे मुनिवर! सूर्य्यवत् अति तेजःशाली उन भगवान् वासुदेवके, स्वर्गवासीकी अपेक्षा भी अधिक सुशील, अति मनोहर सौन्दर्य्यसम्पन्न, अतिशय वीर और बलवान्, कल्याण-सूचक लक्षणसमन्वित अनेकानेक शास्त्रतत्त्वज्ञ अशीतिलक्ष संख्यक पुत्र हुए। एक दिन ब्रह्मतनय तपोनिधि गगनचारी देवर्षि, नारद वासुदेवतनय सन्दर्शनार्थ, विश्वकर्म्माके कौशलमय शिल्पकी फलस्वरूपा, स्वर्णपुरीकी अपेक्षा भी सौन्दर्य्यशालिनी द्वारकामें आये। वल्कलका कौपीन उनका परिधान था; कृष्णसार मृगचर्म्माम्बर उनके गात्रमें शोभित था; उनके हाथमें ब्रह्म-दण्ड था; मुञ्जानिर्म्मित सूत्र उनकी कटिमें बंधा था, वक्षःस्थलस्थित तुलसी-मालासे शरीर भूषित, गोपीचन्दनसे देह चर्चित, अति दीर्घकालव्यापी तपश्च-रणसे शरीर कृश और वह मूर्त्तिमान् अग्निकी तरह जाज्वल्यमान दिखाई देते थे। यादवतनयगणने ऐसे देवर्षि नारदका सन्दर्शनकर, विनय सहित अंशदेश अवनत और मस्तकमें अञ्जलि बांधकर अतिशय नम्रता सहित नमस्कार किया। उनमेंसे केवल सर्व्वापेक्षा देहशोभामें अति अहङ्कारी साम्बने नारदकी सौन्दर्य्यसम्पत्का उपहासकर उन्हें प्रणाम नहीं किया।

मुनिश्रेष्ठ नारद, साम्बका वह मनोभाव जान गये और कुछ व्यक्त न करके कृष्णके मन्दिराभ्यान्तरमें गये। भगवान् वासुदेवने नारदको आते देख अति आदरके साथ प्रत्युत्थान (अभ्यर्थना) किया और मधुपर्क द्वारा पूजा करनेके उपरान्त आसनपर उपवेशन कराया। वासुदेवके साथ अनेकानेक कथोपकथनके बाद जब नारदने देखा, कि भगवान्के पास और कोई नहीं है,तो इस तरह साम्बका कार्य्य उनसे जताया;—"हे यशोदानन्ददायिन् ! साम्बका चरित्र और सौन्दर्य्यराशि देख बोध होता है, कि इन साम्बसे निश्चय ही नितान्त सच्चरित्र होनेपर भी सब साध्वी स्त्रीगणकी धर्मरक्षा करना कठिन होगा। यह आश्चर्य्यका विषय नहीं है ; कारण नारीगण कुल, शील, विद्या और धनकी अपेक्षा न कर कामविमोहित हो केवल रूपकी ही पक्षपातिनी होती हैं। इस त्रिलोकीमें साम्ब ही सर्व्वापेक्षा सुन्दर और हरिणलोचनागण भी स्वभावतः चञ्चलहृदय होती हैं। हे नाथ ! आप निश्चय जानें, कि आपकी प्रधान आठ महिषीके सिवा समस्त यादवललनागण इन साम्बके रूपसे मोहित हुई हैं। सर्व्वज्ञ भगवानने नारदकी ऐसी बात सुनकर और स्त्रियोंकी चञ्चलचित्तता सोचकर, उसीको सत्य समझकर ग्रहण किया। जबतक स्वप्रणयाभिलाषी पुरुषके साथ निर्ज्जनमें एकत्रवास न हो, तभीतक स्त्रीगणका धैर्य्य और मौखिक विवेकशक्ति रहती है। भगवान् श्रीकृष्णने ऐसी विवेचनाकर विवेकरूप सेतु बांध क्रोधरूप नदीका प्रबलवेग रोधकर नारदको विदा किया। देवर्षिके जानेपर प्रभु नाना अनुसन्धानसे भी साम्बका कोई दोष देख न सके। कुछ काल बीतनेपर देवर्षिनारद फिर द्वारकामें आये। उन्होंने, उस समय भगवान् क्रीड़ापरायण यादव-वधगणके साथ क्रीड़ामें नियुक्त हैं जानकर, बाहर क्रीड़ामें व्यापृत साम्बको बुलाकर उन्हें कृष्णके पास जानेके लिये आदेश दिया। "स्त्रीगणपरिवृत्त निर्ज्जनस्थित पिताके पास जाना उचित नहीं होता ; फिर ब्रह्मचारी देवर्षिका वाक्य अवहेलन ही कैसे करूं ?" ऐसी चिन्ताने उस समय साम्बके मनको विचलित किया। "देवर्षिका समुदय अङ्ग ही जलदङ्गारवत् अतिशय तेजःशाली बोध होता है। पहले एक दिन और देवर्षि द्वारकामें आये थे ; उस दिन यदुवंशके सब तनयने इन्हें प्रणाम किया, मैंने नहीं किया। यह पूर्व्वकृत अपराधके ऊपर, दूसरे इस समय यदि पिताके पास न जाकर देवर्षिका आदेश अमान्य करूं, तो मेरे यह दो विषम अपराध देखकर निश्चय ही मेरा विषम अनिष्ट करेंगे। ऐसे समयमें पिताके पास जानेसे, उनके क्रुद्ध होनेकी विशेष सम्भावना है, किन्तु वह भी

मेरी श्लाघाका विषय हुआ है; किन्तु ब्रह्मकोपाग्निमें पड़नेसे मेरे उद्धारकी कोई सम्भावना नहीं है। कारण, शास्त्र ही कहता है, कि जो कुल ब्राह्मणकी कोपाग्निमें पतित होता है, उसमें फिर कभी अङ्कुर नहीं होता; किन्तु दावानलदग्ध वनमें जैसे दूसरी बार अङ्कुर होनेकी सम्भावना होती है, उसीतरह दूसरे व्यक्तिके कोपदग्ध कुलमें, अङ्कुर कभी होनेपर भी हो सकता है। इसतरह सोचते सोचते साम्बपितृगृहमें गये। साम्ब भीतचित्तसे पितृमन्दिरमें प्रवेशकर, स्त्रीगण परिवृत भगवान् वासुदेवको प्रणामकर देवर्षिके आनेका समाचार देना चाहते थे, कि इसी अवसरमें देवर्षि स्वकार्य्य सिद्धिके लिये साम्बके पश्चात ही कृष्णसन्निधानमें उपस्थित हुए। भगवान्ने नारदको आते देख सम्भ्रम सहित निज परिधेय पीत वसनादि यथास्थान सन्निवेश करते करते गात्रोत्थान किया। कृष्णपत्नीगणने स्वामीका ऐसा भाव देखकर सभी सातिशय लज्जित हो अपना अपना वस्त्र यथास्थानमें निवेशित किया। तब भगवान् देवकीनन्दनने समादरकर देवर्षिका हस्तधारणकर अपनी महामूल्य शय्यापर बैठाया। यह देखकर साम्ब अवनतमस्तक हो वहांसे प्रस्थानकर, निज क्रीड़ास्थानमें उपस्थित हुए। महामुनि नारदने साम्बदर्शनसे ही कृष्णपत्नीगणका ऐसा सलज्ज भाव समझकर भगवानसे सम्बोधनकर कहा,—हे नारायण। मैंने पहले साम्बविषयक जो बातें कही थीं, देखिये वह सच हैं या नहीं। इस समय साम्बके असामान्य रूपदर्शनसे ही इन यादवललनाओंने हृदयमें जननी विरुद्ध लज्जाभाव आश्रय किया है। वासुदेवने देवर्षिके वाक्यसे दृढ़विश्वासी हो सहसा क्रोधसे साम्बको बुलाकर शाप दिया; किन्तु इस विषयमें साम्ब वास्तविक ही निर्दोष थे, कारण वासुदेवके स्त्रीसमूहको वह उस समय अपनी माता जाम्बवतीकी तरह ही देखते थे। भगवानने साम्बको अभिसम्पात किया, कि "साम्ब! तुम्हारे इस समयके आगमनजनित दुष्कार्य्यके निमित्त तुम्हारी मातृवर्ग तुम्हारा सौन्दर्य्य दर्शनकर विचलितभाव प्राप्त हुई थीं, इसलिये तुम इस मुहूर्त्तमें ही कुष्ठरोगग्रस्त होगे।" ऐसा भयङ्कर अभिसम्पात सुनकर कुष्ठव्याधिके भयसे साम्बका शरीर कांपा और पापशमनके लिये वह भगवानका स्तव करने लगे। स्तवमय साम्बको कार्य्यतः निर्दोष जान भगवानने उन्हें कुष्ठरोगसे परित्राण पानेके लिये विश्वेश्वराधिष्ठिता वाराणसीमें जाने कहा और महापापसे परित्राण वाराणसीके सिवा और किसी स्थानमें नहीं हो सकता, इसलिये, वहां जाकर विहितरूपसे शिवकी उपासना करनेसे पापसे मुक्ति मिल सकती है। जिससे

उद्धारका उपाय मुनिगण भी चिन्ताकर जान नहीं सकते। जहां साक्षात् विश्वेश्वर और गङ्गा नियत विराज रहे हैं, वहां ऐसे सब पाप भी अनायास प्रशमित होते हैं। केवल मात्र स्वयं जो सब पाप किया जाता है, उससे ही वाराणसीमें उद्धार होता है, ऐसा नहीं, विश्वेश्वरके प्रशप्रभावसे वहांके योगिगण स्वभावकार्य्य पापमय संसारसे भी उद्धार होते हैं और हो रहे हैं। मृत जीवगणके उद्धारके निमित्त कृपापरवश भगवान् पुरारिने पुराकालमें यह वाराणसीक्षेत्र निर्माण किया है। जो जीव वहां देहत्याग करते हैं, उन्हें फिर संसारमें दूसरीबार आना नहीं पड़ता। अतएव हे साम्ब! तुम महादेवके आनन्दवन वाराणसीधाममें ही इस पापसे मुक्ति पाओगे, शीघ्र वहां जाओ; वाराणसीके सिवा कहीं भी तुम्हारी पापशान्ति होनेकी सम्भावना नहीं। सब तरहके शुभाशुभ कार्य्यसे विरत हो, कृतकार्य्य नारदने भी कृपाका आदेश ग्रहणकर गगनपथमें प्रस्थान किया। फिर साम्ब वाराणसीमें आये। वहां एक कुण्ड निर्म्माणकर सूर्य्यकी उपासना करने लगे और सम्पूर्णरूपसे उन्होंने शापसे उद्धार पाया। वाराणसीस्थित साम्ब द्वारा उपासित साम्बादित्य नामक सूर्य्य विग्रह उस समयसे समस्त उपासकवृन्दको सब तरहका विपत्शून्य ऐश्वर्य्य देते आते है। जो व्यक्ति रविवारको अरुणोदयके समय साम्बकुण्डमें स्नानकर भक्तिभावसे साम्बादित्यकी पूजा करते हैं, वह कभी रोगाक्रान्त नहीं होते। जो नारी उनकी सेवा करती हैं, वह कभी विधवा नहीं होतीं और बन्ध्या स्त्री भी उनकी उपासना करनेसे सच्चरित्र, सुन्दर और गुणवान् पुत्रलाभ कर सकती हैं। हे द्विज! शास्त्रबलसे माघमासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी रविवारको हो, तो मङ्गलकर सूर्य्य ग्रहणके समान एक महापर्व्वदिन होता है। उस दिन अरुणोदयकालमें साम्बकुण्डमें स्नानके उपरान्त जो साम्बादित्यकी अर्च्चना करते हैं, उनका अति उत्कट रोग शान्त होता और वह विपुल धर्म्म और ऐश्वर्य्य भी पानेमें सक्षम होते हैं। सूर्य्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें पुण्यजलाशयमें स्नान करनेसे, मनुष्य जो पुण्य सञ्चय कर सकते हैं, माघमासमें सप्तमी तिथिको काशीधामके साम्बकुण्डमें स्नान करनेसे भी वह पुण्य सञ्चय होता है। माघमासके रविवारको उस साम्बकुण्डका वार्षिक उत्सव होता है; उस दिन जो मनुष्य साम्बकुण्डमें स्नानकर अशोकपुष्प द्वारा साम्बादित्यकी पूजा करते हैं, वह कभी दुःखमें पतित नहीं होते; परन्तु उसी समय उनका संवत्सरकृत पाप सम्पूर्णरूपसे प्रशमित होता है। महात्मा साम्ब विश्वेश्वरको पश्चिम ओर सम्यकप्रकारसे सूर्य्यदेवको पूजा

करते हैं। हे अगस्त्य। यह आदित्य विग्रहका विषय मैंने तुमसे कहा। इनकी उपासना करनेसे, प्रणाम करनेसे और आठ बार प्रदक्षिणा करनेसे मनुष्यका सब पाप नष्ट होता है और समग्र आशीर्वादका फल मिलता है। हे, महामुने! यह साम्बादित्यका माहात्म्य तुमसे कहा; जो नर इस उपाख्यानको सुनते हैं, उन्हें फिर यमलोकमें रहना नहीं पड़ता। हे मुनिवर! इसके उपरान्त तुम्हें उन द्रौपदादित्यका विषय सुनाऊंगा, जिनकी आराधनासे भक्तगण अभीष्टफल पाते हैं।

अष्टचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाश अध्याय।

द्रौपदादित्य और मयूखादित्य वर्णन।

सूतने कहा, हे मुनिवर व्यास! जिस समय कार्त्तिकेय अगस्त्य मुनिसे यह सब कहा था, उस समय, द्रौपदी कहां थीं? व्यासने कहा, हे सूत! पुराणशास्त्रमें भूत, भावी और वर्त्तमान, त्रिकालकी बात मालूम होती है; इसलिये उस वेदोपम पुराणशास्त्रपर किसी तरहका सन्देह करना उचित नहीं। स्कन्दने कहा, हे मुनिवर! अवहित हो। पहले देव पञ्चानन, जगत्के हितार्थ, स्वयं पञ्चधा विभक्त हो महीपति पाण्डुके पञ्च तनयरूपमें आविर्भूत हुए थे और जगदम्बिका सती भी पतिविच्छेद न सहकर, यज्ञशील राजाके यज्ञकुण्डसे उत्पन्न हो, उन लोगोंकी पत्नी हुई थीं। रुद्रदेवके दुष्ट दमन करनेके लिये पञ्चपाण्डवरूपसे धरातलमें शरीर ग्रहण करनेपर वैकुण्ठनाथ भी पञ्चपाण्डवके सहकारी हो आविर्भूत हुए थे। उन्होंने जाकर दुष्टका निग्रह, शिष्टकी रक्षा की थी। पाण्डुपुत्रगणने यथाक्रमसे सुखके बाद दुःख, दुःखके बाद सुख भोग किया था। किसी समय इन वीरगणके ज्ञातिकृत विपदमें पड़ बनवासी होनेपर, उनलोगोंकी सहधर्म्मिणी धर्म्मपरायणा पाञ्चालतनयाने पतिगणकी विपदसे व्यथिता हो सूर्य्यकी उपासना की थी। सूर्य्यदेवने द्रौपदीकी आराधनासे सन्तुष्ट हो उन्हें एक हाता और आच्छादन सहित एक थाली देकर कहा था, कि हे सुभगे! जबतक तुम भोजन न करोगी, तबतक कितने ही व्यक्ति क्षुधित होकर क्यों न आवें, सभी इस थालीके अन्नसे तृप्ति पावेंगे; इससे इच्छाधीन वस्तु मिल सकेगी। किन्तु तुम्हारे भोजनके बाद यह सरसद्रव्य परिपूर्ण थाली शून्य हो जायगी। हे मुनिवर! सूर्य्यदेवने काशीमें द्रौपदीको ऐसा वर देनेपर फिर एक वर दिया। सूर्य्यने कहा, विश्वेश्वरकी दक्षिण ओर तुम रहोगी, तुम्हारे सामने ही मेरा अधिष्ठान होगा। यहां मेरा भजन करनेसे जीव

कभी क्षुधासे पीड़ित नहीं होते। हे रतिपरीक्षणे? प्रभु विश्वनाथके सन्तुष्ट होनेपर मैंने उनसे जो वर पाया है, वह सुनो। विश्वेश्वरने कहा था, कि हे दिवाकर! जो व्यक्ति पहले तुम्हारी पूजाकर मेरा दर्शन करेंगे, तुम उनका सब दुःख दूर करोगे। हे द्रौपदि! विश्वेश्वरसे यह वर पानेकी अवधिसे मैं काशीवासी जीवगणका पापनाश करता हूं; यहां मैं जिन लोगों द्वारा पूजित होता हूं, वह मुझसे पूर्णमनोरथ होते हैं"। विश्वेश्वरके दक्षिणभागमें मेरे और दण्डपाणिके निकट तुम रहोगी। काशीस्थ जो पुरुष या स्त्री श्रद्धाके साथ तुम्हारी मूर्त्तिकी पूजा करेंगे, वह कभी प्रियजन-विरह जन्य दुःख नहीं पावेंगे। हे निष्पापे; धर्मशीले! काशीमें तुम्हारा दर्शन करनेसे लोगोंकी व्याधि क्षुधा या तृष्णासम्भूत दारुण कष्ट दूर होगा। भक्ताभीष्टप्रदाता भगवान दिवाकर, पाञ्चालराजपुत्रीको इस तरह वरदानसे आश्वस्ताकर स्वयं शिवोपासनामें आसक्त हुए; तब द्रौपदी भी कृतार्थ हो पतिगणके पास गईं। इस द्रौपदी दिवाकरसम्वादको भक्तिके साथ सुननेसे, लोगोंका सब पाप विनष्ट होता है। कार्त्तिकेय कहा, हे कुम्भयोने! तुमने इन द्रौपदादित्यकी महिमा सुनी; अब मयूखादित्यका माहात्म्य वर्णन करता हूं, सुनो। पूर्व्वकालमें त्रिभुवनख्यात पञ्चनद तीर्थमें देव दिवाकरने "गभस्तीश्वर" नामसे एक भक्तवाञ्छाकल्पतरु शिवलिङ्ग और मङ्गलागौरी नामसे सर्व्वमङ्गलदायनी दुर्गाकी मूर्त्ति प्रतिष्ठाकर वहां दारुणतपस्या की थी। हे मुनिवर! स्वभावतेजसे जगत्तपन तपनदेव, देवमानसे लक्षवर्षतक कैलाशनाथके उद्देशसे कठोर तपस्याकर, तपस्याके तेजसे शतगुण तेजस्वी हो गये। उनकी अग्निमय किरणसे स्वर्गमर्त्त्यका मध्यदेश एकान्त पीड़ित होने लगा। देवतालोगोंने पतङ्गदेवके तेजसे सामान्य पतङ्गकी तरह दग्ध होनेके भयसे गगनपथसे आना जाना छोड़ दिया। जैसे स्फुटित कदम्बफूलकी कलिकाचय ही परिदृष्ट होती है, उसी तरह सूर्य्यदेवके किरणजालसे आहतदृष्टि लोग उनकी मूर्त्ति नहीं देख पाते थे। तब सूर्य्यका तेज और तपःसञ्चय देखकर सभीका अन्तर भयसे कम्पित होने लगा। "वेदने सूर्य्यको जगतकी आत्मा कहकर निर्द्देश किया है, वह आत्मा ही यदि देहको तापित करे, तो दूसरा कौन रक्षामें समर्थ होगा? यह सूर्य्य ही जगतके नेत्र हैं, यह सूर्य्य ही जगत्की आत्मा हैं; इसीलिये प्रतिदिन प्रभातकालमें यह उठकर मृतप्राय जगत्को जागरित करते हैं। प्रतिदिन उठकर इनके करजाल विस्तार करनेपर, अन्धकार कूपमें निपतित जीवगण चारो ओर देखते हैं और इनके

उठने हीसे हमलोग उठते हैं और इनके अस्त हो जानेपर हमलोग भी अस्तमित होते हैं; सुतरां सूर्य्य ही हमलोगोंके उदयानुदयके एकमात्र कारण हैं।" विश्व-स्थित कुल प्राणियोंका ऐसा आक्षेपवाक्य सुनकर, विश्वरूप शम्भुने सूर्य्यको वर देनेके लिये आगमन किया; उस समय दिवाकर वाह्यज्ञानशून्य एकाग्रचित्तसे तपस्या कर रहे थे। भक्तवत्सल उमापतिने उन्हें देख विस्मित और प्रसन्न हो कहा, "हे तेजोराशे सूर्य्य, तपस्यासे विरत हो मुझसे वर प्रार्थना करो।" यह बात दो तीन बार कहनेपर भी ध्यानमग्न सूर्य्यके कर्ण-कुहरमें वह प्रविष्ट न हुई; तब शिवने उनका ध्यानभाव जानकर सुधास्रावी करतल द्वारा उन्हें स्पर्श किया। उससे जैसे पद्मिनी सूर्य्य-कर स्पर्शसे विकसित होती है और जैसे अनावृष्टिप्रभावसे सूखा तृण वृष्टिका जल पानेपर अङ्कुरित होता है, उसी तरह सूर्य्य भी शिव पाणिस्पर्शसे वाह्यज्ञान प्राप्त और विगतताप पाकर, सामने अभीष्टदेव त्रिनयनको देख, साष्टाङ्गसे प्रणामकर, स्तव करने लगे। सूर्य्यने कहा, हे देवदेव! हे जगदीश्वर! हे विभो! हे भर्ग,! हे भव! हे शशाङ्क-शेखर! हे भूतनाथ! आप जीवोंका भवभय दूर करते हैं। हे चन्द्रचूड़! हे मृड़! आप लोगोंका अभीष्ट पूर्ण करते हैं। हे धूर्जटे! हे हर! हे त्रिनयन! आपने दक्षयज्ञ ध्वंस किया था। हे शान्त! हे शाश्वत! हे शिवेश! हे शिव! हे नीललोहित! हे विरूपाक्ष! हे व्योम-केश! हे पशुपाशनाशन! हे वामदेव! हे शितिकण्ठ! हे शूलिन! हे महेश्वर! हे त्र्यम्बक! हे ईश्वर! हे त्राणकारिन्! हे फणिभूषण! हे कामकृत्! हे पशुपते! हे त्रयीमय! हे त्रिनयन! आपने त्रिपुरा-सुरको विनाश किया था। हे कालकूट-पायिन्! आप अन्तकके भी अन्तक हैं। हे शर्व्वरी रहित! हे शर्व्व! हे सर्व्वग! हे स्वर्गमार्ग! हे मोक्षप्रद! हे सुखदा-यिन! हे कपर्द्दिन! हे शङ्कर! हे उग्र! हे गिरिराजपते! हे अन्धकजित्! हे विश्वनाथ! हे विश्वरूप! हे सर्व्वेश! ब्रह्मा, विष्णु और वेद आपकी महिमाको जानकर सदा स्तव करते हैं। हे पर! हे रूपहीन! हे ब्रह्मन! हे अकुटिल! हे सुधाप्रद! हे दूरग! आप वाक्य और मनके अगोचर हैं; आपको मैं बार बार प्रणाम करता हूं। दिवाकर महादेवका प्रदक्षिणाकर इस तरह स्तव करते हुए प्रमुदित मानससे शिवकी अर्द्धाङ्गरूपिणी पार्व्वतीका स्तव करने लगे। रविने कहा, हे देवि! जिस व्यक्तिके भालदेशमें आपके पादपद्मका रेणुचय संलग्न होता है, जन्मान्तरमें भी उसका ललाटस्थल चन्द्र-कलासे भूषित रहता है। हे मङ्गले! आप सब मङ्गलके आलय और सब पाप-

आप तुलाराशि हंसके कहनेमें वह्निस्वरूपा हैं; आपने हावभाव रूलय कर, विश्वकी रक्षा की हैं; हे विश्वमयी! आप विश्वका सृजन, पालन और संहार करती हैं। आपकी नामकी सैकड़ों पुण्यनदी, जीवोंके पापरूप तृणनिचयको दहन करती हैं। हे मातः भवानि! संसारमें एक मात्र आपकी शरणागत होनेसे, लोगोंका भव-भय दूर होता है; जिसपर आप कृपा-दृष्टि विक्षेप करती हैं, संसारमें वही धन्य और मान्य होते हैं। भक्तकी मोक्षदायी सम्पाकाशा काशीरूपा, आपको जो मुक्तमति स्मरण करते हैं, भगवान् महादेव भी स्वयं उस मोक्षरक्षाके उपायमें व्यक्तिकी रक्षा करते रहते हैं। हे मातः! जिनके हृत-पद्ममें आपके चरणयुगल अवस्थित होते हैं, समस्त जगत् उनके करस्थ है। हे गौरि! जो व्यक्ति आपका नाम जपते हैं, उनके घरमें अष्टविध सिद्धि सदा अवस्थान करती हैं। हे देवि! आप ही वेदमाता प्रणवरूपिणी हैं, द्विजातिगणकी सर्वाभीष्ट-दायिनी गायत्री हैं; आप ही व्याहृतित्रय हैं; आप ही सब कर्मसाक्षिका देवगण तृप्तिकारिणी स्वाहा और पितृगण तृप्ति-जनिका स्वधा हैं। आप महादेवकी गौरी, ब्रह्माकी सावित्री, विष्णुकी लक्ष्मी और काशीमें मोक्षलक्ष्मी होकर विराज रही हैं। हे मातः! आप मेरी शरण्या हों। सूर्यदेवने इस मङ्गलाष्टक नामक स्तोत्र द्वारा शिवाङ्गरूपिणी दुर्गाका स्तवकर गौरी और शिवको बार बार प्रणाम करते हुए उनके पास मौनभाव धर अवस्थान करनेपर, देवदेव कहने लगे, हे मतिमन् सूर्य्य! और तपस्याका प्रयोजन नहीं है, मैं प्रसन्न हुआ हूँ; तुम मेरे नेत्रस्थानीय होकर विश्वसंसार अवलोकन करो। हे सूर्य्य! तुम मेरी ही मूर्त्ति हो, इसलिये तुम समस्त तेजके आधार और सर्वज्ञ होकर, सब जगह विचरण करते हुए सब भक्तजनोंका दुःख निवारण करो। तुमने जिस स्तोत्र द्वारा मेरा स्तव किया, उस स्तवका पाठ जो लोग करेंगे, उन्हें मेरी निश्चला भक्ति होगी और पार्वतीका जो मङ्गलाष्टक नामक स्तव किया, उसके द्वारा पार्वतीका स्तव करनेसे, जीवका सब अमङ्गल दूर होगा। यह मेरा चतुःषष्टि नामक स्तोत्र और दुर्गाका मङ्गलाष्टक स्तोत्र अति श्रेष्ठ, पवित्र और सर्वपापविनाशन है। प्रतिदिन त्रिसन्ध्याको विशुद्ध भावसे इस स्तोत्रका पाठ करनेसे, मानव दूर देशस्थ होकर भी दुर्लभ काशी पा सकेंगे। जो मनुष्य प्रतिदिन इन दोनो स्तोत्रका पाठ करते, वह निष्पाप होते हैं; उनके शरीरमें किसी तरहका पाप आश्रय नहीं करने पाता। त्रिसन्ध्यामें यह स्तोत्र जिसके कण्ठसे निःसृत होता है, उन्हें दूसरे किसी स्तोत्रका प्रयोजन नहीं होता। काशीधाममें मोक्षाभिलाषी व्यक्तिगण

दूसरे यह स्तोत्र परित्यागकर, यत्नके साथ इस ही स्तोत्रका पाठ करेंगी; इससे मोक्ष-लाभ उनको करस्थ होता है। यह विश्व-संसार स्वप्न होका प्रपञ्च है, सुतरां यह दोनों स्तोत्र पढ़नेसे, जीवको फिर प्रपञ्चमें आना नहीं पड़ता। इस स्तवका पाठ करनेसे, मानव पुत्र पौत्र और सम्पत्ति सम्पत्तिभागी हो, अन्तकालमें मुक्त होते हैं, हे ग्रहाधिप; जो व्यक्ति तुम्हारे प्रतिष्ठित इन गभस्तीश्वर नामक शिवको पूजा करेंगी, उन्हें सर्व्वसिद्धि मिलेगी। यह लिङ्ग, पञ्चाग्नि-गभस्तिमाला द्वारा तुम्हारे पूजित हुए हैं इसलिये, गभस्तीश्वर नामसे विख्यात होंगे। मनुष्य पञ्चनद तीर्थमें स्नान-कर इन लिङ्गकी पूजा करनेसे, निष्पाप हो फिर जठरयातना नहीं भोगते। जो नारी या नर चैत्र मासकी शुक्ल तृतीयाको उपवासी रह निशीथकालमें वस्त्रलङ्का-रादि विविध उपचार द्वारा इन मङ्गला गौरीकी पूजा करेंगी; फिर उसी रात गीतवाद्यके अनुष्ठानपूर्व्वक जागरणकर, प्रभातमें द्वादश कुमारीको बुलाकर उन सबको परमान्नादि भोजन करावेंगी और दक्षिणा प्रदानकर और व्यक्तिगणको भी सदक्षिण भोजन करावेंगी, फिर "जातवेदस" इत्यादि मन्त्रपाठसे सतिल घृत द्वारा अष्टो-त्तर शत आहुति प्रदान करेंगी; फिर किसी एक ब्राह्मणको गोमिथुन दक्षिणा दे, आचार्यके साथ द्विजदम्पतीको भूषणालङ्कृतकर, "मङ्गला गौरि मङ्गलं प्रयच्छ मे" इस मन्त्र उच्चारणपूर्वक ब्राह्मण भोजनके उप-रान्त दूसरे दिन प्रातःकालको पारण करती हैं, उनको कभी दुर्भाग्य और दारिद्र्य उपस्थित नहीं होता, कभी उन्हें अपत्यविरह यातना भोगना नहीं पड़ती; सदा ही वह विविध भोगसुख अनुभव करती हैं। स्त्री विधवा नहीं होती, पुरुष स्त्रीवियोगी नहीं होते। पापराशि दूर हो पुण्यसमूह आकर उनका आश्रय करते हैं। इस मङ्ग-लाव्रतके अनुष्ठानसे वन्ध्या भी प्रजावती और कुरूप भी सुन्दर होती हैं। कुमारी यह व्रत करके रूपवान् और गुणवान् पुत्र पाती हैं और कुमार यह व्रत करके उत्कृष्ट स्त्रीरत्न पाते हैं। जगत्में जितने अर्थकर और अभीष्टप्रद व्रत हैं, वह कोई भी मङ्गलाव्रतके समान नहीं हैं। आरोग्य व्यक्तिमात्रको ही चैत्रमासकी शुक्लातृती-याको इनकी वार्षिकी यात्रा करना उचित है। हे दिनमणि! और एक बात सुनो। तपस्याके समय आकाशपथमें तुम्हारा मयूखचय ही दिखाई दिया था, देह नहीं दिखाई दी, इसलिये आजसे तुम्हारा नाम मयूखादित्य हुआ। तुम्हारी अर्चनासे लोगोंको व्याधिभय नहीं रहता और रवि-वारमें इस जगह तुम्हारा दर्शन करनेसे लोग दरिद्र नहीं होते। महादेव, मयू-खादित्यको इसतरह वर देकर, अन्तर्हित हुए; सूर्य्यने भी वहीं अवस्थान किया।

द्रौपदादित्यके साथ इन मयूखादित्यका पवित्र उपाख्यान सुननेसे जीवको नरकभय नहीं रहता।

एकोनपञ्चाश अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥

पञ्चाश अध्याय।

गरुड़ेश्वर और खखोल्कादित्य वृत्तान्त।

कार्त्तिकेयने कहा, हे कुम्भयोने! काशीमें अन्यान्य जो सब आदित्य हैं, मैं सादर उनकी विषय वर्णन करता हूं, सुनो। विश्वेश्वरके उत्तरभागमें खखोल्क नामक आदित्य विराज रहे हैं; उनकी उपासना करनेसे लोग निर्व्याधि होते हैं। इनका खखोल्क नाम होनेका कारण कहता हूं, अवहित हो सुनो। पहले दक्ष प्रजापतिकी कद्रु और विनता नाम्नी कन्याद्वयसे, मरीचिसम्भव कश्यपने विवाह किया। एक दिन सपत्नीद्वय क्रीड़ा कौतुक करती करती, आपसमें बातचीत करने लगीं। कद्रूने कहा, भगिनि! विनते! आकाशमण्डलमें सर्व्वत्र ही तुम गमन करती हो; तुमसे वहांका एक प्रश्न करती हूं; यदि वह जानती हो, तो मुझसे कहो। यह जो दिनमणि गगनमें विचरण करते हैं, सुनती हूं, इनके रथमें उच्चैःश्रवा नामक अश्व है। तुम इस समय कह सकती हो, कि उसका वर्ण श्याम है, अथवा श्वेत? किन्तु इस विषयमें तुम पणबन्धपूर्व्वक एकपक्ष अवलम्बन करो, मैं भी उस प्रतिज्ञाको स्वीकारकर दूसरेपक्षका आश्रय करूंगी। तुम्हारी अभिरुचि अनुसार ही पण रखा हो। इस तरहकी कोई क्रीड़ा न करनेसे दिन अतिवाहन नहीं होता। विनताने कहा, हे कल्याणि! कद्रु! इस विषयमें कोई प्रतिज्ञा करनेका प्रयोजन नहीं; मैं विना प्रतिज्ञाके ही स्वीकृत हूं। इस विषयमें हम दोनोमें कोई जय पाकर भी दूसरेको पराजयसे सुखलाभ नहीं कर सकतीं; कारण एकके जयी होनेसे दूसरेको क्रोध उत्पन्न होता है। ऐसा समझकर, परस्पर स्नेहवान् व्यक्ति आपसमें किसी तरहकी प्रतिज्ञा नहीं करते। कद्रूने कहा, हे भगिनि! विनते! यह अति तुच्छ क्रीड़ा है, इसमें क्रोधका कोई कारण नहीं दिखाई देता; सामान्य क्रीड़ामें भी पण धार्य्य करना, उसका एक व्यवहार मात्र है। विनताने कहा, हे शुभे! जो तुम्हारा अभिमत हो, वही करो। विनताकी बात सुनकर, "कुटिलमति कद्रूने कहा, "इस क्रीड़ामें जो पराजिता हो, वह पराजयकारिणीकी दासी होगी" इस तरहकी प्रतिज्ञा ही स्थिर हुई और हमारी चिरसङ्गिनी सखियां इस प्रतिज्ञाकी साक्षी रहें। सर्पिणी कद्रु और पक्षिणी विनताकी ऐसी प्रतिज्ञा होनेपर, कद्रूने कहा, मैं कहती हूं, कि 'उच्चैःश्रवा कर्व्वुरवर्ण है।' विनताने कहा, मेरी जान 'उच्चैःश्रवा वर्ण श्वेत है'

ऐसा कहकर, जिसकी बात सच है, उसकी परीक्षाके लिये किसी निर्द्दिष्ट समयमें किसी ऊंची जगह जाकर दोनो ही देखेंगी यह स्थिरकर, दोनो अपने अपने स्थानमें लौट आईं। इधर कद्रू ने अपने घरमें आकर अपने सन्तान सर्पगणको बुलाकर, आदेश दिया, कि हे पुत्रगण! सुरासुरगणने मन्दराचलको मथानी बनाकर क्षीरसागरको मथनकर जिस अश्वरत्न को पाया था, सम्प्रति मेरे आदेशसे तुमलोग उन सूर्य्यके अश्व उच्चैःश्रवाके पास जाओ। मैं निश्चय जानती हूं, कि कार्य्यमात्रसे ही कारणगुण होता है; सुतरां इसमें सन्देह नहीं, कि शुभ्रसलिल क्षीरसमुद्रसम्भूत उच्चैःश्रवा शुभ्रवर्ण है। तुमलोग वहां जाकर श्वेतवर्ण अश्वको कृष्णवर्ण कर डालो। तुमलोग उसकी पूंछके पास रहकर, असित कुन्तलकी तरह शोभा पाओगे और तुमलोगोंके विषफुत्कार द्वारा उसके शरीरका सब लोम ही कृष्णवर्ण होगा। कुरूप कद्रु-सन्तानगण माताकी ऐसी बात सुनकर, जननीका अभिवादनकर कहने लगे, हे मातः! हमलोग आपका बुलाना सुनकर समझे "हमलोगोंकी जननी कोई मिष्टखाद्य लेकर बुलाती हैं," यही सोचकर, सब लोग खेल छोड़कर शीघ्र इस जगह आये हैं; किन्तु मिष्टान्न कहां! आज उसके विनिमयसे दुरन्त आदेश पाया। यह विषसे भी अधिकतर कड़वा जान पड़ता है। हे जननि! जो कभी हमलोगोंके चिन्तापथमें नहीं आया, आपके प्रसादसे आज वही हुआ। हे मातः! आप यदि कोई खाद्यवस्तु प्रदान करें, तो उससे हमलोग परम आनन्दित होंगे; किन्तु ऐसी आज्ञा हमलोगोंके प्रति न करिये। खलबुद्धि सर्पोंने इस तरह मातृनिर्देश अवहेला किया। स्कन्दने कहा हे मुनिवर! इन सर्पगणकी तरह जिनकी बुद्धि कुटिला, हृदय कापट्यपूर्ण और चित्त सदा ही परछिद्रमें प्रवेशके लिये व्यस्त होता है; उनके द्वारा ही जनकजननीगण अवश्यात ही लज्जा पाती हैं। जो अहङ्कारी हो पितामाताकी बात अतिक्रम करते हैं, वह थोड़े दिनमें ही अधोगति पाते हैं। तब कद्रुने तनयगणका दुर्व्यवहार देखकर, उन सबके प्रति कुपिता हो, उनलोगोंके अपराधकी शान्तिके लिये, यह शाप प्रदान किया, कि "हे दुष्टमतिगण! तुमलोग मेरे वाक्य उल्लङ्घनजनित पापसे गरुड़के भक्ष्य होगे और तुम्हारी नारीगण सद्योजात अपने सन्तानगणको ही भक्षण करेंगी।" सर्पगण जननीके इस शापानलसे भीत हो, प्रायः सब पाताल भाग गये, अवशिष्ट कोई कोई मातृशापसे प्राणरक्षा करनेकी आशासे, उनकी आज्ञापालनके लिये उद्योगी हुए। उन लोगोंने आकाशपथमें उड़कर, उच्चैःश्रवाकी पूंछका आश्रयकर, फुत्कार करते हुए, तीक्ष्णविष-

उदयकालमें उस पर्वतको अस्तान्तर अवगाहन किया। वहां सूर्य्यदेव भी उस मार्ग आया पार्श्वचारियोंको अपनी प्रखर किरणसे क्लेश देनेमें किसी तरह समर्थ नहीं हुए। इसी समय कद्रूने विनताकी पीठपर चढ़कर नभस्तल भूषित करती अति समुन्नतप्रदेशमें पहुंचकर प्रखर किरण-शाली सूर्य्यका प्रखर तेज न सहकर, विनताको सम्बोधनकर कहा, हे भगिनि! तुम मुझे छोड़ दो, मेरी देह, तपनतापसे अत्यन्त सन्तप्त हो रही है, तुम अकेली हो आओ, मैं नहीं जा सकूंगी। तुम स्वभावसे पतङ्गी हो, यह सूर्य्य भी पतङ्ग हैं; सुतरां तुम अनायास अर्कसम्मुख जाती हो, तुम्हें कोई क्लेश भी नहीं होता। यह सूर्य्य आकाशरूप सरोवरके हंसस्वरूप हैं और तुम भी हंसगामिनी हो, इसीलिये सूर्य्यकी प्रचण्ड किरणसे तुम्हें किसी तरह पीड़ा नहीं होती। इस तरह कद्रूके बारबार कहनेपर विनता और ऊपर चढ़ने लगी। यह देखकर कद्रू अति कातर हो, फिर कहने लगीं, हे विनते! हे भगिनि! आओ हमलोग यहांसे चलें; मैं विनय कर कहती हूं, मेरी रक्षा करो; मैं नहीं सह सकती। तुम क्यों ऐसा करती हो? यदि तुम मेरी रक्षा करोगी, तो मैं जबतक बचूंगी, तबतक तुम्हारी दासी हो आदिसे प्रतिपालन करूंगी। हे अदिति! मैंने नागोंपर निर्दय प्रहार कर-रखे हैं। इसतरह किसीमें भयसे आतङ्कसे जड़ता होनेसे, ऐसा अशुद्ध वाक्य उच्चारण करके, कि सहस्रांशु पड़ता है, कद्रू विनताकी पीठपर मूर्च्छिता हो गईं। उस समय कद्रूके मुंहसे अयत्नाच्चरित्वसम सहस्रांशुकी बात निकली थी, इसलिये विनता सूर्य्यका सहस्रांशु नाम रख बहुत तरहसे स्तुति करने लगीं। भगवान् सहस्ररश्मिने विनताके स्तवसे प्रसन्न हो, कुछ कालके लिये अपने किरणोंकी उग्रता समेट ली। फिर कद्रू और विनता सूर्य्यके रथमें आबद्ध उस उच्चैःश्रवाको अच्छीतरह और देख सकीं। सत्यवादिनी जगन्माता विनताने, उसे दूरहीसे देखकर, कद्रूसे कहा, हे भगिनि! उच्चैःश्रवा चन्द्रकिरणकी तरह धवल होनेपर भी आज मेरे अदृष्टसे उसका वर्णविपर्य्यय हुआ है; तुम्हारी ही जय हुई! भाग्य ही सर्व्वश्रेष्ठ होनेकी वजह कभी कपटीकी जय और अकपटीकी पराजय होती है। इसतरह विनीतभावसे कहकर विनता अपने घर लौट यथाविधानसे कद्रूकी दासी होकर रहीं। इसतरह दासीभावसे कुछ दिन बीतनेपर, एक दिन वैनतेय गरुड़ने अपनी जननी विनताको अश्रुपूर्णनयना और मलिनकान्ति देखकर कहा, हे मातः! नित्य प्रभात होते ही आप कहां जाती हैं? सारा दिन बिताकर सन्ध्या समय जब घरमें आती हैं, तो आपकी देहकान्ति मलिन

और स्वयं प्रतिबिम्बित देखती हूं और दीप्यमान वा पतिविमानिताकी तरह आप सदा ही दीर्घनिश्वास त्याग किया करती हैं; हे मातः! यह कहिये, कि आपको काहेका दुःख है। बालकी भी भय दिखाता मेरे जैसा पुत्र रहते भी आप किसलिये सदा रोया करती हैं? हे जननि! अधिकांश स्त्रीगण कभी दीर्घ अशुभ भोग नहीं करतीं और जो सन्तान जीवित रहकर जननीका दुःख दूर नहीं करते, उनके जीवनको धिक् है और उनकी माताका वन्ध्या होना ही अच्छा था। वात्सल्य गरुड़की ऐसी बात सुनकर, विनता प्रमुदित हृदयसे कहने लगीं, वत्स गरुड़! मैं कठिनहृदया कद्रूकी दासी हो उसे और उसके सन्तानगणको पीठपर चढ़ाकर, प्रतिदिन नाना स्थानमें विचरण करती हूं। वह लोग जहां ले जानेकी आज्ञा देते हैं, मैं दीनभावसे उन्हें वहीं ले जाती हूं। गरुड़ने कहा, हे मातः! आप कश्यपकी भार्या, दक्षप्रजापतिकी कन्या और स्वयं विख्याता होकर भी क्यों ऐसे भावसे सपत्नीकी दासी हुई? गरुड़की ऐसी बात सुनकर विनताने सूर्यके अश्व देखनेकी अवधिसे अपनी प्रतिज्ञानुयायी ऐसी दासीत्वप्राप्ति-विवरण सम्यक् रूपसे उनपर प्रकाश किया। तब गरुड़ने कहा, हे जननि! आप उन दुर्वृत्तोंके पास जाकर पूछिये, कि "इस जगतमें तुम लोगोंको जो एकान्त दुर्लभ है, ऐसी चाहे किसी वस्तुका अभिलाष तुम लोगोंको हो, वह वस्तु देनेसे तुम लोग मेरा दासीत्व मोचन करोगी या नहीं?" गरुड़की ऐसी बात सुनकर कद्रू और उसकी सन्तानोंके पास जा विनताके यह प्रस्ताव करनेपर नागोंने आपसमें परामर्श कर आनन्दमानससे उनसे कहा, यदि तुम मेरी माताको दास्यसे मुक्ति पानेकी अभिलाषिणी हो, तो स्वर्गसे केवल एकमात्र अमृत लाकर देनेसे हमलोग तुम्हारा दासीत्व मोचन कर देंगी; नहीं तो इसी भावसे ही रहोगी। विनताने उन लोगोंकी बातसे ही असम्मति प्रकाशकर कद्रूसे वातचीत कर अपने घर आ गरुड़से सब बातें कहीं। गरुड़ने चिन्ताकुला जननीसे कहा, हे मातः! आप समझ लें, कि मैं अमृत ले आया, मेरा असाध्य कुछ भी नहीं है; इस समय मुझे कुछ खानेको दीजिये। यह सुनकर विनताने पुलकित-देहा हो कहा, वत्स गरुड़! तुम्हारा मङ्गल हो और समुद्र किनारे जाकर वहांके मत्स्यघाती निषादगणको भक्षणकर बहुतसे जीवोंका उपकार साधन करो। जो परायेका प्राण नष्टकर अपने प्राणकी रक्षा करते हैं, उन दुर्वृत्तोंका भक्षण करनेसे परम मङ्गलमय विधाताका अभिप्रेत कार्य करना होगा और स्वयं सकल मङ्गल पा सकोगे। जो जीव हिंसा करते हैं,

उनका विनाश करनेसे स्वर्ग मिलता है; कारण जीवघातियोंके विनाशसे कितने ही जीव मृत्युमुखसे रक्षित होते हैं। यदि उन निषादगणमें कोई ब्राह्मण हों, तो तत्क्षणात उन्हें परित्याग करना; उन्हें कभी भक्षण न करना। गरुड़ने कहा, जननि! आपने आदेश किया कि, "यदि उनमेंसे कोई ब्राह्मण दिखाई दें, तो उन्हें भक्षण न करना"; किन्तु किस उपायसे मैं उन लोगोंमेंसे ब्राह्मणको पहचान सकूंगा? विनताने कहा, हे वत्स! जिनके गलेमें यज्ञसूत्र हो; जो सदा ही निर्मल उत्तरीय वस्त्र और धौत अधोवास धारण करते हैं; जिनके ललाटमें तिलकशोभित हो; जिनके हाथमें कुशकी अंगूठी हो, कटिमें कुशमयी मेखला और मस्तकमें ग्रन्थिबद्ध शिखा देखो; उनको ही ब्राह्मण समझना। या वेदत्रयके अन्तर्गत एक मन्त्र भी जिनके कण्ठसे उच्चारित हो और जो गायत्रीके सिवा दूसरे मन्त्रकी उपासना नहीं करते, उनको भी ब्राह्मण ही समझना। गरुड़ने कहा, हे जननि! जो ब्राह्मण सदा पापचारी निषादगणमें रहते हैं, उनके ब्राह्मणत्वपरिचायक किसी चिह्नके रहनेकी सम्भावना नहीं, तब कोई दूसरा ब्राह्मणत्वज्ञापक लक्षण निर्देश कीजिये, जिसमें वह सब ब्राह्मण भी हों तो यह देख कर ब्राह्मणके कण्ठगत होनेपर भी परित्याग कर सकूंगा। तनयकी ऐसी बात सुनकर विनताने उत्तर दिया, वत्स! जो कण्ठगत हो तुम्हारा कण्ठ ज्वलितखदिराङ्गकी तरह दग्ध करे, उनको ही ब्राह्मण समझकर परित्याग करना; कारण आत्याचाररहित ब्राह्मणको भी विनाश करनेसे विनाशककी, देश, कुल, ऐश्वर्य्य और क्रमशः शरीर भी क्षय होता है! गरुड़, मातृमुखसे ब्राह्मणविज्ञापक चिह्न पहचानकर उनके चरणमें साष्टाङ्ग प्रणतिपूर्व्वक उनका आशीर्व्वाद शिरोधार्य्यकर शीघ्र आकाशपथमें उड़े। कुछ क्षण जानेपर ही उन्होंने दूरसे उन मत्स्यघाती निषादगणको देखा और कम्पितपक्षद्वय द्वारा धूलराशि उत्थापित किया। इससे भूतल और नभस्तल आच्छादितकर सागरतटमें उपविष्ट हो, निषादकुल उदरसात् करनेके लिये उन्होंने मुंह पसार दिया। निषादगण पक्षीके पक्षकम्पनसे दिग्मण्डल धूलिसमाच्छन्न और वात्याकुल देख भयसे इधर उधर भागने लगे; किन्तु वहलोग गरुड़के कण्ठदेशको ही भागनेकी सुगम राह समझ उसमें ही प्रवेश करने लगे। उनमें एक निषादसंसर्गी आचारहीन ब्राह्मणके प्रविष्ट होनेसे गरुड़के कण्ठमें अग्निदाह उपस्थित हुई। तब गरुड़ने पूर्व्वप्रविष्ट निषादगणको भक्षणकर उस अग्निकी तरह दाहकारीको ब्राह्मण समझ माताकी बात सोचकर उन्हें उगल दिया और उन उगले हुए व्यक्तिको देखकर कहा, हे मत्स्यघातक! सच